ABOUT THE AUTHOR

Reprinted from the Vikram University Research Journal 'The Vikram' (Arts), Vol XV No. 2 & 4, special Mahabharata War Chronology Issue.

Born in 1912, Professor G. W. Kaveeshwar had a brilliant academic career at the Holkar College and the Christian College at Indore (M.P.). Obtaining the Master's degree in Philosophy in 1932, he also later passed the Law examination standing first in the (Agra) University. But for a few intervening years as Judicial Officer, he has devoted his lifetime to studying, teaching, lecturing and writing on Philosophy. In addition he has also been College Principal and has guided and examined research work in different Indian universities.

Back in 1933, Professor Kaveeshwar's book *The Metaphysics of Berkeley* was published; which, said the *London Times*, is " in many ways an achievement of unusual merit. He has a sound faculty of philosophical discrimination...his nicely-balanced criticism and appreciation of Berkeley ...outstanding philosophical merits of Mr. Kaveeshwar's work... " The reviewer in the famous *Philosophy* of England also expressed, " I respect the achievement ". Eminent persons appreciating it included the British philosopher C. E. M. Joad and Dr. G. A. Johnston. Two years later came out his work in Marathi on Art and Morality hailed as the best Marathi essay of the year; and prescribed for higher studies by the universities of Bombay, Poona, Nagpur, Indore, Karnataka, Baroda, etc. Two scholars have written a book discussing Professor Kaveeshwar's views on this subject. Not to mention his other works, in 1951 appeared the voluminous Marathi *Gita-tattva darshana*, containing an exhaustive, comparative and original study of the famous Gita discourse; followed recently by its English edition *The Ethics of the Gita*, with a foreword by Dr. S. Radhakrishnan, and recognised as Learned Research Work by the University Grants Commission of India. In the meanwhile he edited (and contributed to) *The Problems of Child Education in India*. In 1953 he was elected President of the first Marathi Literary Conference of M. P.

And now he presents the chronological Secrets of the great Mahabharata.

महाभारत युद्ध के कालगणनात्मक रहस्य

—प्रा. ग. वा. कवीश्वर

"और फिर महामुनि व्यास ने अपनी महाभारत रचना में जटिल गुत्थियाँ निर्माण करना प्रारंभ किया; जिनके बारे में उन्होंने प्रतिज्ञापूर्वक कहा है कि '(इसमें) आठ हजार आठ सौ (कूट) श्लोक (मैंने रखे) हैं, जिनका वास्तविक आशय (केवल) मैं जानता हूँ, (मेरा पुत्र) शुक जानता है, तथा (मेरा शिष्य) संजय कुछ अंश में जानता है और कुछ में नहीं'। वे (व्यास के) कूट श्लोक आज तक उनके गहन आशय के गूढत्व के कारण अगम्य बन बैठे हैं।"

—महाभारत, आदिपर्व, अध्याय १, श्लोक ८०, ८१, ८२.

आधुनिक भारतवर्ष के मूर्धन्य हिन्दी कवि, प्रसिद्ध विद्वान, डॉ. शिवमंगलसिंह 'सुमन', कुलपति, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन :—

"महाभारत युद्ध की कालगणना के रहस्य का उद्घाटन करके प्राचार्य कवीश्वर ने इतिहास की बहुत बड़ी जटिल गुत्थी को सुलझाया है। यह उनकी जीवन भर की साधना और अप्रतिहत आराधना का प्रतिफल है। भारत ही नहीं, विश्व के प्राचीनतम इतिहास की घटनाओं का कालनिर्णय करने का यह वैज्ञानिक विवेचन विश्वसंस्कृति को महत्त्वपूर्ण योगदान माना जा सकेगा।"

"महान शोध कार्य......आप जैसे विद्वानों से विक्रम विश्वविद्यालय विशेषतः और भारत वर्ष सामान्यतः गौरवान्वित हो रहा है।"

(प्रकांड पंडित डॉ. सम्पूर्णानंद भूतपूर्व मुख्य मंत्रि उत्तर प्रदेश, अग्रगण्य प्राच्य-विद्या विशारद डॉ. मिराशी डी. लिट्., तथा अन्य विद्वानों की सम्मतियाँ अंदर देखिये)

महाभारत युद्ध
के
कालगणनात्मक रहस्य

(गीताजयंती की वास्तविक तिथि)

लेखक

प्राचार्य
ग. वा. कवीश्वर
इन्दोर, मध्यप्रदेश

१९७२

मूल्य सात रुपये

प्रकाशक :
ग. वा. कवीश्वर,
३४ जानकी नगर,
इन्दोर – १ (मध्यप्रदेश)

मुद्रक :
द. वा. आंबेकर,
आर्यभूषण मुद्रणालय,
९१५/१ शिवाजीनगर, पुणे ४.

सर्वाधिकार लेखक के सुरक्षित

प्रथम प्रकाशन : विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन द्वारा

यह पुस्तक निम्न भाषाओं में भी उपलब्ध है —
मराठी : (रु. तीन)
अंग्रेजी : (रु. आठ)

प्रस्तावना

करीब पाँच वर्ष पूर्व जब मैंने घोषित किया कि महाभारत के प्राचीन कालगणनात्मक कूट, जिनका सदियों से समाधान अप्राप्त था, अब हल हो गये हैं, तथा उसकी प्रमुख घटनाओं की तिथियाँ निश्चित हो गई है, बहुतही थोडे व्यक्तियों का विश्वास हुवा;–– जो स्वाभाविक था। फिरभी जिन इनेगिने महानुभावों ने मेरे कथन पर प्रथम गंभीर ध्यान दिया, उनमें थे आधुनिक भारत के एक प्रमुख व्यक्ति डॉ. सम्पूर्णानंद (भूतपूर्व मुख्य मंत्री उत्तर प्रदेश तथा राज्यपाल राजस्थान) जिनके उद्गार इस पुस्तक में अन्यत्र दिये हैं। और थे श्री. ल. ओं. जोशी, आयू. ए. एस्. (तब सचिव, केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार), जिन्होंने दिल्ली के लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ में मेरी इस अनुसंधान पर सर्वप्रथम व्याख्यान माला का उद्घाटन (तथा श्रवण भी) किया। इसके बाद मुंबई, पुणे, नागपुर, गोवा, अमरावती, इन्दोर, आदि कई स्थानों पर मेरे व्याख्यान हुए। नागपुर में प्राचीन इतिहास एवं संस्कृत के ख्याति प्राप्त विद्वान महामहोपाध्याय डॉ. वा. वि. मिराशी, डी. लिट्., ने व्यक्त किया कि महाभारत में जो युद्धकाल की गणना के विषय में अनेकानेक आपाततः परस्पर विरोधी वचन हैं, उन सबका समाधानकारक स्पष्टीकरण एवं एकसूत्रीकरण अब इस विवेचन में सर्वप्रथम प्राप्त हो गया है।

मैं उज्जैन स्थित विक्रम विश्वविद्यालय के कुलपति विद्वद्वर्य डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' का भी हृदय से ऋणी हूँ। केवल विक्रम विश्वविद्यालय की ही नहीं, अपितु भारत वर्ष के शिक्षा एवं साहित्य के क्षेत्रों की, उनके मार्ग दर्शन के लिये इच्छुक, कई महत्त्वपूर्ण गतिविधियों के कारण अत्यंत व्यस्त होते हुए भी डॉ. सुमन ने अपना बहुमूल्य समय देकर विक्रम विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित मेरे व्याख्यानों का सभापतित्व किया; तथा विश्वविद्यालयीन शोधपत्रिका 'विक्रम' का, अपने प्राक्कथन के साथ, एक विशेष अंक भी प्रकाशित किया, जिसमें महाभारत युद्ध कालगणना के मेरे प्रमुख निष्कर्ष अंग्रेजी तथा साथ में हिंदी में दिये हैं। वर्तमान पुस्तिका उसीके हिंदी विभाग का पुनर्मुद्रण है।

इस दरम्यान यह पूरा विवेचन, फिलहाल हिंदी में, विस्तृत रूप से लिख कर तैयार होकर प्रकाशन की उचित व्यवस्था की अपेक्षा में है। उसका प्रथम खण्ड युद्धपूर्व काल (मुख्यतः वनवास–अज्ञातवास के तेरह वर्ष) से संबंधित है। तथा द्वितीय खण्ड युद्धकाल की तिथियाँ पूरे प्रमाणोंसहित निश्चित करता है, जिसीका सारांश इस प्रबंध में दिया है।

अंत में, मैं आभारी हूँ उन विभिन्नभाषी पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों का भी, जिन्होंने इस शोध के विषय में समय समय पर समाचार, लेख तथा टिप्पणियाँ प्रकाशित की।

३४ जानकी नगर,
इन्दौर-१ (म. प्र.)
५-१२-१९७२.

ग. वा. कवीश्वर.

अनुक्रमणिका

			पान
प्रारंभिक	...	...	१
स्थूल पार्श्वभूमि	...	...	२
युद्धारंभ तिथि का कूट	...	...	५
बलराम की तीर्थयात्रा के दिन	...	...	६
कुछ अन्य कूट	...	...	८
भीष्मनिधन तिथि की गहन समस्या	...	...	९
महाभारत के युद्धवर्णन का रहस्य	...	...	१३
अवकाशदिनों में एक अपवाद	...	...	१५
अंतिम युद्ध दिवस	...	...	१७
एक पंक्ति, जो प्रक्षिप्त नहीं है	...	...	२१
गीताजयंति की वास्तविक तिथि	...	...	२२
युद्धारंभ दिन का नक्षत्र	...	...	२४
भीष्मनिधन की वास्तविक तिथि	...	...	२७
क्या अवकाश दिनों की कल्पना प्रक्षिप्त है ?	...	...	२८
कुछ सूक्ष्म संकेत	...	...	३०
व्यास की मार्मिकता	...	...	३३
धर्मयुद्ध के नियम	...	...	३७
तेरहवे अवकाश दिन का स्पष्ट प्रमाण	...	...	३८
अंतिम अवकाश दिन	...	...	४३
महाकवि की कूट कुशलता	...	...	४७
अन्य भी प्रमुख तिथियाँ	...	...	४९
तिथि तालिका	...	...	५०
समारोप	...	...	५३

कुछ अशुद्धियाँ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४४	११	हिमालयीन (या, कुछ लालिमावाली) सरस्वती नदी के किनारे	अरुणा एवं सरस्वती नदियों के संगम
४५	२०	ने अपने शिबिरों मे सुना	ने सुना, जब वह कुरुक्षेत्रपर अपने हिस्से में सेना के साथ उपस्थित था।
४५	३१	पर शिबिरों मे आने	पर आने

श्री

महाभारत युद्ध के कालगणनात्मक रहस्य

महाभारत विश्वसाहित्य में एक अद्वितीय ग्रंथ है। इसकी रचना के विषय में एक मनोरंजक दंतकथा है। इसके रचयिता महर्षि व्यास माने जाते हैं। जब उन्होंने इस महाकाव्य का पूरा कथानक मन में तैयार कर लिया तब काव्यरूप में उसको प्रत्यक्ष लिखने वास्ते उन्होंने साक्षात् श्रीगणेशजी से ही अनुरोध किया। गणेश ने शर्त रखी कि उनकी लेखनी, अर्थात् महर्षि कवि की काव्यरचना, अविरत चलती रहना चाहिये। उत्तर में महाकवि ने भी शर्त रखी कि, लिखनेवाले गणेशजी ने प्रत्येक श्लोक उसका वास्तविक सुसंगत अर्थ समझने के बाद ही लिखना चाहिये। इस विलक्षण संदर्भ में महर्षि व्यास ने अपनी काव्यरचना में स्थान स्थान पर ऐसे गहन कूट श्लोक करना प्रारंभ किया, कि उनका गूढार्थ समझने में विद्या की देवता गणेश को भी कुछ समय रुकना पडता और उतने में महाकवि आगे के कई श्लोक तैयार कर रखते ! इस प्रकार रचना और लेखन का क्रम अविरत चलता रहा !

इस दंतकथा में सार हो या न हो, यह तो सर्वप्रसिद्ध है कि महाभारत काव्य में उसके महान् रचयिता ने आव्हानपूर्वक कई दुर्गम गूढ श्लोक रखे हैं, जिनका वास्तविक आशय खोजने के प्रयास विद्वानों द्वारा सदियों से किये जा रहे हैं। इन कूट श्लोकों की गिनती तथा महर्षि व्यास का उनके विषय में आत्मविश्वासपूर्ण आव्हान आदिपर्व में निम्न शब्दों में व्यक्त है[1] —

ग्रंथग्रंथिं तदा चक्रे मुनिर्गूढं कुतूहलात्।
यस्मिन् प्रतिज्ञया प्राह मुनिर्द्वैपायनस्त्विदम् ॥ १/८० ॥
अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च।
अहं वेद्मि शुको वेत्ति संजयो वेत्ति वा न वा ॥ ८१ ॥

---

१. इस लेख में उद्धृत तथा उल्लेखित महाभारत के श्लोक गीता प्रेस (गोरखपूर) की आवृत्ति से लिये हैं। किन्तु मैने उनकी तुलना पूना की भांडारकर प्राच्य अनुसंधान संस्था द्वारा प्रकाशित महाभारत की आवृत्ति से भी कर ली है। उस आवृत्ति में उक्त संस्था द्वारा प्रमाणित माने गये पाठ के अलावा अन्य भी कई वैकल्पिक पाठ दिये हैं। अध्याय तथा श्लोकों के क्रमांक में स्वाभाविक ही कुछ भेद होने के अतिरिक्त, मूल श्लोकों की भाषा में जो यत्रतत्र शाब्दिक भेद पाया गया, उससे मेरे मुख्य प्रतिपादन पर कोई असर नही पडता। जहाँ एक दो स्थान पर विशेष महत्त्व का भेद दिखा, मैने उसका स्पष्ट उल्लेख किया होकर, मेरा स्वीकारा हुवा पाठ किस प्रकार निश्चित अधिक विश्वासार्ह है यह भी बताया है। फिर भी इसका यह मतलब नहीं कि गीता प्रेस ने जो हिंदी भाषांतर दिया है वह सब सही है। कई मार्मिक स्थलों पर वह भाषांतर उन्ही परंपरागत धारणाओं पर आधारित है, जिनकी भ्रामकता मैंने इस विवेचन में विस्तार से स्पष्ट की है। इस लेख की सहायता से पाठक चाहें तो स्वयं उसका अनुभव कर सकते हैं।

तच्छ्लोककूटमद्यापि ग्रथितं सुदृढं मुने।
भेत्तुं न शक्यतेऽर्थस्य गूढत्वात् प्रश्रितस्य च ॥ ८२ ॥

ये कूटस्थल कई प्रकार के हैं। इनमें से कुछ दार्शनिक हैं; जो प्रायः श्रीमद्भगवद्गीता में मिलते हैं। कुछ कूटस्थल घटनाओं के वर्णन में आते हैं; उदाहरणार्थ, महाभारत युद्ध में अर्जुन द्वारा सूर्यास्तपूर्व जयद्रथवध का जो एक अत्यंत रोमांचकारी प्रसंग है, उसके वर्णन में महाकवि ने एक गहन कूट रख छोडा है। फिर कुछ कूट श्लोक स्थलनिर्देश से भी संबंधित हैं; वे वनपर्व में हैं। और अंत में आते हैं प्रसिद्ध कालगणनात्मक कूट, जिनका संबंध महाभारत कथा की प्रमुख घटनाओं की तिथियों से तथा कालानुक्रम से है।

इन कूटस्थलों के कारण महाभारत काव्य में कई स्थानों पर अगम्य विसंगतिओं के आभास निर्माण हो गये हैं; जिनको देखकर अनेक विद्वान विचार व्यक्त करते हैं कि यह महाकाव्य एक से अधिक व्यक्तियों की रचना है। किन्तु मेरा नम्र आत्मविश्वास है कि इनमें से प्रायः सब कालगणनात्मक कूटों के सुसंगत हल अब प्राप्त हो गये हैं, जिनको देखते हुए महाभारत कथा का एक प्रचंड, सूक्ष्म, किन्तु पूर्ण सुसंगत चित्र हमारे सामने खडा होता है। इस विषय पर मैंने गत करीब तीन वर्षों में दिल्लीस्थित शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ से प्रारंभ कर इन्दौर विश्वविद्यालय, विक्रम विश्वविद्यालय (उज्जैन), विदर्भ संशोधन मंदिर (नागपूर), तथा बंबई, गोवा, पूना, अमरावती आदि स्थानों पर विद्वज्जनों की उपस्थिति में व्याख्यान दिये, एवं आकाशवाणी से अंग्रेजी, हिंदी तथा मराठी में भाषण प्रसारित किये। इनमें मैंने युद्धपूर्व (अर्थात् राजसूय यज्ञ एवम् वनवास प्रारंभ से अज्ञातवास समाप्ति एवं उत्तरा-अभिमन्यु विवाह तक) तथा युद्धकालीन (अर्थात् श्रीकृष्ण की शांतिवार्ता तथा युद्धप्रारंभ से भीष्मनिधन तक) कूटों का स्पष्टीकरण कर महाभारत कथा की कुछ अत्यंत महत्त्वपूर्ण तिथियाँ निश्चित की।

यह पूरा विवेचन समग्र प्रमाणों सहित ग्रंथरूप में लिख कर तैयार है, जिसके प्रकाशन का प्रयास चालू है। इस दरम्यान इस लेख में महाभारत युद्धकाल संबंधी प्रमुख निष्कर्ष पाठकों के सामने संक्षेप में प्रस्तुत हैं। इस संदर्भ में दीर्घकाल से गूढ बन बैठी जिन युद्धकालीन कूट समस्याओं के हल अब प्राप्त हो रहे हैं उनका कुछ परिचय प्रथम इष्ट होगा।

स्थूल पार्श्वभूमि

प्रारंभ में उस भयानक युद्ध की कुछ स्थूल पृष्ठभूमि यहाँ देखिये। जैसा कि पाठक भलीभाँति जानते ही हैं, धृतराष्ट्र और राजा पण्डु सगे भाई होकर धृतराष्ट्र के सौ पुत्र (जो कौरव कहलाते थे) एवं पण्डु के पाँच पुत्र (पांडव) थे। पांडवों के बाल्यावस्था में ही पण्डु की मृत्यु होने से उनकी माता कुंती उनको लेकर हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र के पास आई। वहाँ कौरव तथा पांडव दोनों की शिक्षा-दीक्षा एक साथ होने लगी। द्रोणाचार्य गुरु थे; तथा स्वयं धृतराष्ट्र अंध होनेसे पितामह भीष्म राज्य का कार्य देखते थे। पांडवों के अनेकानेक सद्गुणों के कारण वे जनता में बहुत आदर तथा प्रेम पाते थे। और इस लिये दुर्योधनादि कौरव उनका तीव्र मत्सर करने लगे। यहाँ तक कि उन्होंने पांडवों की प्रत्यक्ष हत्या के भी प्रयास किये, किन्तु भाग्यवशात् हर समय पांडव बच निकले।

युवावस्था प्राप्त होने पर पांडवों ने इन्द्रप्रस्थ में अपना अलग राज्य स्थापन किया, तथा दुर्योधन हस्तिनापुर में राज्य करता रहा। शीघ्र ही अपने अतुल शौर्य एवं उदार चरित्र के प्रभाव से पांडवों ने भारतवर्ष के एक बडे भाग पर अपना प्रभुत्व स्थापन कर असीम संपत्ति अर्जित की, तथा इन्द्रप्रस्थ में महान् राजसूय यज्ञ भी संपन्न किया। इससे दुर्योधन का मत्सराग्नि अब अत्यंत ही प्रज्वलित हुआ। किन्तु प्रत्यक्ष रणभूमि पर पांडवों की बराबरी या पराजय करने का साहस न होनेसे, दुर्योधन ने उनको द्यूत वास्ते आमंत्रित किया। तदनुसार पांडव हस्तिनापुर आये। कपटपूर्ण खेल के कारण कौरव द्यूत में दाँव पर दाँव जीतते ही गये, और पांडव अपनी सारी संपत्ति, राज्य, यहाँ तक की स्वयं की स्वतंत्रता तथा साम्राज्ञी द्रौपदी को भी दाँव पर लगा कर हार गये। इसपर भरी सभा में कौरवों ने कर्ण की प्रेरणा से निर्लज्जता पूर्वक द्रौपदी वस्त्रहरण का नीचतम प्रयास भी किया, जिसका सब ओर से तीव्र धिक्कार होने लगा। तब अंध धृतराष्ट्र ने हस्तक्षेप कर पांडवों को उनकी स्वतंत्रता तथा संपत्ति सहित राज्य वापिस प्रदान किया। पांडव तुरंत इन्द्रप्रस्थ जाने लगे। किंतु कुछ ही क्षणों में दुर्योधन ने अपने पिता की संमति प्राप्त कर पांडवों को तुरंत रास्ते में से ही पुनः द्यूतार्थ बुलाया। इस समय शर्त यह थी कि जो पक्ष हारेगा वह बारह वर्ष वनवास में तथा तेरहवाँ वर्ष अज्ञातवास में बिता-येगा, और यदि अज्ञातवास समय में उस पक्ष का कोई भी व्यक्ति ढूंढा गया तो वह पक्ष फिर से उसी प्रकार वनवास में जावेगा। किन्तु यदि उस पक्ष ने तेरहवाँ साल अज्ञातवास में पूर्णतया व्यतीत किया तो उसका राज्य वापिस लौटाया जावेगा। पांडव फिर इस दूसरे द्यूत में भी हारे और करार के अनुसार उसी दिन तत्काल हस्तिनापुर से ही वनवास पर निकल पडे।

कथा का अधिक विस्तार न करते यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि पांडवों ने वनवास के बारह साल ठीक पूरे किये, और वे विराट नगरी में अज्ञातवास करने लगे। दुर्योधन ने उनको खोजने का खूब प्रयास किया, परंतु वह असफल रहा। फिर पांडवों की कालगणनानुसार जब तेरहवाँ वर्ष ठीक समाप्त हो रहा था, उस दिन सूर्योदय पर (दुर्योधन द्वारा विराट राज्य पर आक्रमण के समय उसके विरोध में रणभूमि पर) स्वयं अर्जुन प्रकट हुवा। किन्तु दुर्योधन कहने लगा कि उस रोज तेरहवाँ वर्ष वस्तुतः समाप्त नहीं हो रहा था। अतः उसने पांडवों को राज्य लौटाने से इन्कार किया। इसी कारण कौरव-पांडवों का महायुद्ध हुवा।

यहींपर महाभारत के सुप्रसिद्ध कालगणनात्मक कूटों का संबंध आता है। तेरहवे साल की गणना किसकी ठीक थी? पांडवों की या कौरवों की? स्पष्ट है कि यदि पांडवों ने करार के अनुसार तेरहवे साल के पूरे दिन अज्ञातवास में व्यतीत न किये हो तो, उनकी तथा उनके परम मित्र एवं मार्गदर्शक स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण की-बल्कि समूचे महाभारत एवम् विश्वप्रसिद्ध गीतासंवाद की-पूरी नैतिक भूमिका मिट्टी में मिल जावेगी। अतः इस बात की चर्चा विद्वान सदियों से कर रहे हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस मूलभूत समस्या का सही हल निकालने के लिये वनवास प्रारंभ की तिथि तथा अज्ञातवास से पांडव प्रकट होने की तिथि प्रथम निश्चित करना अत्यंत आवश्यक है। इसी के बाद निर्णय दिया जा सकेगा कि पांडवों ने वस्तुतः तेरहवाँ वर्ष पूर्ण किया था या नहीं। किन्तु महाकवि ने अत्यंत खूबी से द्यूत की अर्थात् वनवास प्रारंभ की तिथि गुप्त रखी है। उधर अज्ञातवास समाप्ति तिथि के विषय में भी महाभारत में इतनाही कहा है कि वह ग्रीष्म ऋतु की

कृष्ण अष्टमी थी, किन्तु उसका निश्चित माह नहीं दिया है। हाँ, महाकवि ने उन तिथियों के अनुमान में सहायक सूक्ष्म संकेत अवश्य महाभारत के श्लोकों में रखे हैं।

अब ये दोनों मूल तिथियाँ निश्चित रूप से ढूंढ निकाली गई हैं। इसके अलावा, महाकवि केवल इतना ही बताते हैं कि पांडव प्रकट हुये उस दिन दुर्योधन के अनुसार तेरहवाँ वर्ष पूर्ण नहीं हो रहा था; किन्तु स्वयं दुर्योधन की गणना से वह कब समाप्त होना चाहिये था यह नहीं बताया है। दुर्योधन के मन की वह तिथि भी इस संशोधन में प्राप्त हो गई है। और उससे एक अत्यंत विलक्षण तथ्य भी प्रकाश में आया है कि, दुर्योधन के अनुसार तेरहवाँ वर्ष पांडव प्रकट होने की तिथि से ठीक अठारह दिन बाद समाप्त हो रहा था। इस प्रकार यह रहस्य स्पष्ट हो रहा है कि इन अठारह दिनों के अंतर के कारण ही महाकवि ने उस भयानक युद्ध की प्रत्यक्ष लड़ाई का काल ठीक अठारह दिन ही बताया है! "वह युद्ध अठारह दिनों के लिये हुवा"—अर्थात अठारह दिन लड़ा गया; और साथ में दुर्योधन के अनुसार पांडवों ने अज्ञातवास में जो अठारह दिन कम व्यतीत किये उनके कारण भी हुवा! अब निश्चित हो रही इस सब कालगणना से महाभारत काव्य की रचना के समय प्रचलित पंचांग पद्धति पर भी प्रकाश पडता है। यह भी सिद्ध होता है कि पांडवों ने करार के अनुसार तेरहवाँ वर्ष बराबर पूर्ण किया था। किन्तु इसके अलावा एक और विलक्षण तथ्य सामने आता है कि दुर्योधन के आग्रह के आधार में भी आपाततः कुछ ठीक दिखने वाली (किन्तु अन्ततोगत्वा असमर्थनीय) एक बात थी; जिसीके कारण वह भी अपने पक्ष में एक विशाल निष्ठावान सेना खडी कर सका। महाभारत के रचयिता का यह एक महान् कालगणनात्मक कूट है। किन्तु जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, यह सब विवेचन जो इस संशोधन के पूर्वार्ध में आता है, यद्यपि अत्यंत मनोरंजक एवम् महत्त्वपूर्ण है, फिलहाल इस लेख में समाविष्ट न कर यह पुस्तिका मुख्यतः युद्ध-कालीन तिथियों तक ही सीमित रखी जाती है।

अस्तु। दुर्योधन ने पांडवों को उनका इन्द्रप्रस्थ का राज्य लौटाने से इन्कार करने पर, दोनों पक्षों ने संभाव्य युद्ध के लिये विशाल सेनाएँ तथा शस्त्रसामग्री एकत्रित करना प्रारंभ किया। इस दरम्यान आपसी समझौते के प्रयास भी चालू रहे; किन्तु वे निष्फल रहे। अंत में जब चार छः माह के बाद दोनों सेनाएँ पूर्णतया सुसज्ज होकर लड़ाई के लिये तैयार खडी हो गई, स्वयम् भगवान् श्रीकृष्ण शांतिपूर्ण हल के अंतिम प्रयास में पांडवों की ओर से कौरवों को मिलने हस्तिनापुर गये। महाभारत के अभ्यासकों में प्रायः एकमत है कि, श्रीकृष्ण उपप्लव्य से (जहाँ पांडवों का उस समय अस्थायी निवास था) जब शांतिवार्ता के हेतु हस्तिनापुर के लिये निकले, वह तिथि कार्तिक पूर्णिमा के दो तीन रोज पूर्व थी, तथा उस रोज चन्द्रमा रेवती नक्षत्र में था। इस प्रवास में श्रीकृष्ण को कुल कितना समय लगा इस विषय में भी महाभारतकार ने एक छोटासा कालगणनात्मक कूट रखा है। किन्तु उसका यहाँ विवेचन न करते, इस पुस्तिका में निश्चित की हुई तिथितालिका का प्रारंभ जिस दिन श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर में प्रत्यक्ष शांतिवार्ता की उस रोज से किया है। शांतिवार्ता में दुर्योधन ने पांडवों को उनका पूरा राज्य तो क्या, सुई की नोंक बराबर भूमि भी देने से इन्कार किया। स्वाभाविकतः शांतिवार्ता एक ही बैठक में भंग हो गई। अब महायुद्ध अवश्यंभावी देखकर भगवान् श्रीकृष्ण पांडवों को शांतिवार्ता की असफलता का वृत्त देनेवास्ते उसी रोज तत्काल हस्तिनापुर से वापिस निकले।

युद्धारंभ तिथि का कूट

वापिस लौटते समय हस्तिनापुर नगर की सीमा तक जाते जाते श्रीकृष्ण ने अकेले कर्ण से विशेष वार्ता की। कर्ण कुंती का ही विवाहपूर्व किन्तु जन्म होते ही त्याग दिया हुवा पुत्र था; अतः इस दृष्टि से वह पांडवों का बडा भाई था। उस आधार पर श्रीकृष्ण ने अपने वार्तालाप में कर्ण को दुष्ट कौरवपक्ष छोडकर पांडवों के पक्ष में मिलने का प्रस्ताव किया। किन्तु कई वर्षों से दुर्योधन के साथ मित्रभाव से रहने के बाद अब युद्ध के ऐन मौके पर इस प्रकार पक्ष बदलना कर्ण ने अमान्य किया। उसपर श्रीकृष्ण ने तत्काल वहींपर कर्ण के पास आगामी अमावास्या को युद्धारंभ तिथि घोषित कर दी। उस समय का मौसिम तथा कुछ अंश में मास भी वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा—

> **ब्रूयाः कर्ण इतो गत्वा द्रोणं शान्तनवं कृपम्**
> **सौम्योऽयं वर्तते मासः सुप्रापयवसेन्धनः॥** (उद्योगपर्व १४६।१६)
> **सर्वौषधिवनस्फीतः फलवानल्पमक्षिकः।**
> **निष्पंको रसवत्तोयं नात्युष्णशिशिरो सुखः॥ १७॥**
> **सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति।**
> **संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम्॥ १८॥**

"कर्ण, यहाँ से वापिस लौटकर द्रोण (शन्तनुपुत्र), भीष्म, तथा कृपाचार्य (आदि) से कहो कि, यह सौम्य हवामान का मास चल रहा है, जिसमें (पशुओं को) चारा तथा जलाऊ लकडी सुलभता से प्राप्त होती है — १६. सब प्रकार की वनस्पतिओं से वन परिपूर्ण है, वृक्ष फलभार से लदे हैं, मक्खियाँ बहुत कम हो गई हैं, भूमि कीचड से मुक्त है, पेय जल सुस्वादु है तथा इस सुखद मौसिम में न अधिक गर्मी है न सर्दी — १७. (आज से) सात दिन बाद अमावास्या आ रही है जिसकी देवता इन्द्र बताई गई है; उस अमावास्या पर युद्ध आरंभ किया जावे— १८"। घोषणादिन से वह अमावास्या सात रोज बाद आनेवाली थी। पूर्णिमान्त मास पद्धति से वह अमावास्या मार्गशीर्ष की और अमावास्यान्त पद्धति से कार्तिक की कही जावेगी[२]। उस अमावास्या को कौरव–पांडव युद्ध वस्तुतः प्रारंभ नहीं हुवा ऐसा महाभारत में कहीं भी लिखा नहीं है। युद्धारंभ के ही दिन गीता का उपदेश अर्जुन को दिया गया यह तो निर्विवाद है। अतः स्पष्ट है कि स्वयं

---

२. दोनों पद्धतियों में शुक्ल पक्ष में भेद नही आता; किन्तु कृष्ण पक्ष में एक माह का फरक हो जाता है। भारत के विभिन्न भागों में ये पद्धतियाँ प्रचलित हैं। महाभारत की कालगणना कौनसी मास-पद्धति से है? यह भी एक समस्या है। स्थूल दृष्टि में कुछ वचन एक पद्धति, तो कुछ अन्य वचन दूसरी बताते हैं। किन्तु इस लेखक का विश्वास है कि सूक्ष्म अध्ययन से सिद्ध होता है की महाभारत के रचयिता की दृष्टि में मूलतः अमावास्यान्त मासपद्धति ही थी। हाँ, उस विषय में कूटमय वातावरण निर्माण करने हेतु वे प्रायः कृष्ण पक्ष के उल्लेख में मास का नाम नहीं देते! इस प्रश्न पर निश्चित उत्तर का महत्त्व पाठक जानते ही होंगे; क्यों कि उससे महाकवि के निश्चित निवास स्थान तथा कालखंड पर प्रकाश पडता है।

श्रीकृष्णवचनानुसार गीतोपदेश अमावास्याको ही किया गया। फिर गीताजयंती उक्त अमावास्या के स्थान पर उसके ग्यारह रोज बाद मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी को मनाने की परंपरा क्यों प्रचलित है ?

बात यह है कि महाकवि ने अपनी कूटरचना के क्रम में महाभारत में आगे जाकर यह भी लिखा है कि जयद्रथ वध के रोज (जो लड़ाई का चौदहवाँ दिन था) उत्तररात्रि में चन्द्र का उदय हुवा था। ऐसा चन्द्रोदय किसी कृष्ण पक्ष के द्वितीय सप्ताह में ही संभव है। अब अभ्यासकों के सामने समस्या यह आई कि, अमावास्या को युद्धारंभ मानकर लगातार चौदहवाँ दिन शुक्ल पक्ष के अंतिम दिनों में ही आवेगा; कृष्णपक्ष के द्वितीय सप्ताह में कदापि नही ! इस लिये कई विद्वान उक्त अमावास्या के स्थान पर मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी को (या उसके करीब) युद्धारंभ की, अर्थात् गीताजयंती की, तिथि मानने लगे। ताकि वहाँसे लगातार चौदहवाँ दिन कृष्णपक्ष के उत्तरार्ध में आकर उक्त चन्द्रोदय सिद्ध हो सके। किन्तु स्वयं महाभारत काव्य में इस वैकल्पिक तिथि का कोई उल्लेख नहीं है। बल्कि उससे उपरोक्त स्पष्ट कृष्णवचन का अनादर होकर, आगे भीष्म निधन तिथि का विलक्षण कूट भी हल नहीं होता। उधर अन्य विद्वान (नागपुर के डॉ. दप्तरी,[3] मुंबई के महामहोपाध्याय डॉ. काणे,[4] आदि) अमावास्या को ही युद्धारंभ तो मानते हैं, किन्तु चौदहवे युद्धदिन के चन्द्रोदय वर्णन को अनधिकृत (इंटरपोलेशन्) बताकर अपना समाधान कर लेते हैं। परन्तु उस वर्णन को मूल महाभारत पाठ से बहिष्कृत करने का भी कोई पर्याप्त कारण नहीं है। इस प्रकार यद्यपि व्यवहार में प्रायः सर्वत्र गीता-जयंती एकादशी को ही मनाई जाती आ रही है, विद्वानों के लिये युद्धारंभ तिथि एक जटिल समस्या बन बैठी थी।[5]

बलराम की तीर्थयात्रा के दिन

इसके बाद बलराम की तीर्थयात्रा के दिनों की समस्या लीजिए। कौरव-पांडवों के आपसी स्वजन युद्ध से बलराम अत्यंत रुष्ट थे। उन्होंने श्रीकृष्ण को उस युद्ध में किसी प्रकार से भी

३. देखिये, " The Astronomical Method and its Application to the Chronology of ancient India ", (नागपूर विश्वविद्यालय में दिये व्याख्यान), १९४२, विशेषतः पृष्ठ १२५–१२९.

४. " History of Dharmashastra ", Vol. III, PP 907–915.

५. देखिये, " The fight over the date of the Mahabharata war is raging as stiff and furious as the Mahabharata war itself. But without winning this fight we can not capture the citadel of Ancient Indian Chronology. We must, therefore, exert all our efforts to win it." — Dr. Daftari (above-quoted book, P. 13). " The whole of Indian history depends upon the date of the Mahabharata war, for the dates of accesion of kings of the various Hindu dynasties are invariably calculated in all our Puranas and other works of authority from the time of Mahabharata war, "— Mr. T. S. Narayan Shastri (Quoted by Professor K. Shriniwas Raghavan in " The Date of the Maha Bharat War and the Kali Yugadhi " P. 12.)

सहभागी न होने के लिये समझाने का प्रयास किया। किन्तु श्रीकृष्ण यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से लडना नहीं चाहते थे, फिर भी अर्जुन का सारथ्य करना उन्होंने मान्य कर लिया था। श्रीकृष्ण ने बलराम की बात न मानने पर बलराम तत्काल सरस्वती नदी के किनारे के आसपास तीर्थयात्रा पर चले गये। यह तीर्थयात्रा उसी दिन प्रारंभ हुई जिस रोज श्रीकृष्ण हस्तिनापुर में युद्धारंभ तिथि घोषित कर तुरंत पांडवों के पास उपप्लव्य नगर में वापिस चले आये थे। बलराम की पांडवों से तथा श्रीकृष्ण से उस दिन उपप्लव्य में ही भेट हुई थी। महाभारतकार स्पष्ट कहते हैं कि वह तीर्थयात्रा पुष्य नक्षत्र पर प्रारंभ हुई थी; और बयालीसवे दिन युद्ध के अंतिम रोज भीम-दुर्योधन गदायुद्ध के समय समाप्त हुई, जब चन्द्रमा श्रवण नक्षत्र में था। इस संबंध में स्वयं बलराम का निम्न वचन है—

चत्वारिंशत् अहान्यद्य द्वे च मे निसृतस्य वै।
पुष्येण संप्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः ॥ (शल्यपर्व ३४।६)
शिष्ययोर्वै गदायुद्धं द्रष्टुकामोऽस्मि माधव ॥ ७ ॥

" श्रीकृष्ण, (आपसे बिदा होकर तीर्थयात्रा के लिये) मुझे निकले आज बयालीसवाँ दिन है। मैं पुष्य नक्षत्र पर निकला था और (आज तीर्थयात्रा समाप्त कर आपके पास) श्रवण नक्षत्र-पर वापिस आया हूँ। मैं अपने दोनों शिष्यों (दुर्योधन एवं भीम) का गदायुद्ध देखना चाहता हूँ। " यात्रा के ये बयालीस दिन अभीतक कूट बने हुए थे। यात्रा अमावास्या के सात दिन पूर्व प्रारंभ हुई थी। अतः जो लेखक उस अमावास्या से ही युद्धारंभ मानते हैं, वे उन युद्धपूर्व सात दिनों में उनकी परंपरागत धारणा के अनुसार युद्धकाल के अठारह दिन मिलाते रहे। किन्तु उससे तीर्थयात्रा के कुल पचीस ही दिन सिद्ध होते हैं; जहाँ स्वयं बलराम बयालीस दिन बता रहे हैं। फिर मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी को युद्धारंभ मानने से पचीस में केवल ग्यारह दिन और मिलाकर कुल छत्तीस दिन ही होते हैं, बयालीस नहीं। इसी प्रकार बलराम वचन में उल्लेखित नक्षत्रों का भी हिसाब बैठ नहीं रहा था, क्योंकि पुष्य से श्रवण न तो पचीस स्थान दूर है, न छत्तीस ! अंत में डॉ. दप्तरी ने (देखिये पूर्वोल्लेखित पुस्तक, पृ. ७ तथा ११७) यहाँ तक सूचना कर दी कि, बलराम के उक्त वचन में पुष्य के स्थान पर श्रवण और श्रवण के स्थान पर पुष्य पढ़ा जावे; क्योंकि श्रवण से पुष्प ४१ वे स्थान पर है, और डॉ. दप्तरी के हिसाब से (यात्रा का प्रारंभ युद्धारंभ के २२-२३ दिन पूर्व सीधे द्वारका से ही मानकर—जिसके लिये महाभारत में कोई आधार नहीं है, बलराम यात्रा के उतने दिन जैसे तैसे हो सकते हैं। परंतु उसी श्लोक के प्रथम पंक्ति में बयालीस दिन का स्पष्ट उल्लेख है उसका क्या करना ? वैसे अभिजित् मिलाकर यदि कुल नक्षत्र संख्या अट्ठाईस मानी जाय तो श्रवण से पुष्य ४२ वे स्थान पर भी बताया जा सकता है; किन्तु चूँकि डॉ. दप्तरी युद्ध के अठारहवे दिन पुष्य नक्षत्र बताने के साथ उधर युद्ध के प्रथम दिन ज्येष्ठा नक्षत्र बताते हैं, यह स्पष्ट है कि वे अभिजित् को नहीं मानते। अतः उनकी गणनानुसार श्रवण से पुष्य ४१ वे स्थान पर ही आता है। और फिर, यात्रारंभ के दिन के पुष्य नक्षत्र का उल्लेख बलराम के उस वचन के अलावा महाभारत में अन्य भी कई स्थानों पर है। क्या हम उन सभी स्थानों पर पुष्य की जगह श्रवण पढेंगे ?

एक अन्य विद्वान राजस्थान के ज्योतिर्विद पंडित देवकीनंदन खेडवाल, बलराम तीर्थयात्रा के दिन ४२ के बजाय ३८ ही गिनकर हिसाब बैठाने का प्रयास करते हैं।[6] वे बलराम के उक्त श्लोक

६. भारतीय कालगणना, पृष्ठ १२९–१३०.

का आधार तो लेते हैं; किन्तु उसकी दूसरी पंक्ति में ‘ श्रवणे ’ के स्थानपर ‘ श्रवणेन ’ पढकर, तथा (चूँकि संस्कृत में ‘ श्रवण ’ का अर्थ ‘ सुनना ’ भी होता है) उस शब्द का नक्षत्रविशेष से संबंधही हटाकर ‘ गदायुद्ध का समाचार सुनकर ’ ऐसा आशय निकालना चाहते हैं । इस दृष्टि से वे लिखते हैं, “ अर्थात् बलरामजी ने कहा कि आज मुझे दो कम चालीस (३८) दिन हो गये हैं । मैं पुष्य नक्षत्र में गया था और गदायुद्ध होने का वृत्तांत श्रवण करके पुनः आया हूँ । किन्तु इसका अर्थ विद्वान लोग इस प्रकार करते हैं कि–आज मुझे गये ४२ दिन हो गये हैं, मैं पुष्य नक्षत्र में गया था और श्रवण नक्षत्र में आया हूँ । पुष्य से श्रवण ४२ वा नक्षत्र है अतः सबका ध्यान इसीपर जाता है । परंतु ४२ दिनों की संख्या ठीक नहीं होने के कारण युद्ध की समाप्ति अमावस्या को नहीं बैठती । अतः बलरामजी मार्गशीर्ष कृष्णा अष्टमी को पुष्य नक्षत्र में गये थे और नारदजी के मुख से गदायुद्ध का वृत्तांत सुनकर पौष कृष्ण ३० को ३८ वे दिन आये थे यही अर्थ शुद्ध है । ” किन्तु इस प्रकार महाभारत के उस श्लोक में ‘ श्रवणे ’ के स्थानपर ‘ श्रवणेन ’ पढना (जिससे छंद के दृष्टि से एक अक्षर अधिक भी हो जाता है), और फिर उसमें से श्रवण नक्षत्र को ही हटा देना कहाँ तक उचित है यह पाठक ही सोचें । और इतना करनेपर भी उस श्लोक के प्रथम पंक्ति में चालीस में दो अधिक करने के बजाय कम करेने को कुछ भी आधार है क्या यह भी देखा जावे। जैसा कि पाठक इस लेख में आगे देखेंगे, अब बलराम यात्रा से संबद्ध पुष्य नक्षत्र, श्रवण नक्षत्र तथा ४२ दिन आदि सबका हिसाब बराबर सिद्ध हो रहा है ।

कुछ अन्य कूट

युद्ध समाप्ति के बाद विजयी पांडवों ने एकदम राजधानी हस्तिनापुर में प्रवेश नहीं किया । अत्यंत धर्मनिष्ठता से उन्होंने युद्ध में दोनो पक्षों के मृत वीरों की प्रथम विधिवत् अंत्येष्टि क्रिया की । और उसके पश्चात् नगर के बाहर नदीतट पर एक पूरा माह अशौच पालन में व्यतीत किया । महाभारत में उसका निम्न स्पष्ट उल्लेख है—

> तत्र ते सुमहात्मानो न्यवसन् पाण्डुनन्दनाः ।
> शौचं निवर्तयिष्यन्तो मासमात्रं बहिःपुरात् ॥ (शांतिपर्व १/२)

“ वहाँ शहर के बाहर (नदीतट पर) महात्मा पांडवों ने अशौचपालन करते हुए एक मास निवास किया । ” किन्तु युद्धकाल की गूढ गणना ध्यान में न आने से इस एक महीने का हिसाब न बैठकर, अशौचपालन के युद्धोत्तर केवल बारह दिन ही गिनने का प्रयास प्रसिद्ध संस्कृत भाष्यकार आचार्य नीलकंठ, पुणें के डॉ. बेलवलकर[७] आदि कई प्राचीन एवम् अर्वाचीन विद्वान करते रहे ।

इसी प्रकार तीक्ष्ण बाणों की शरशय्या पर महात्मा भीष्माचार्य ने जो महान् धर्मोपदेश दिया (जिसका विस्तृत कथन शांतिपर्व एवं अनुशासनपर्व में आता है) उसके निश्चित दिन भी अभीतक विवादास्पद बने थे । कुछ विद्वान वे दिन करीब तीस मानते हैं; तो कुछ आठ या ग्यारह बताते हैं। कुछ विद्वानों ने तो इस सारे उपदेश को प्रक्षिप्त (इंटरपोलेशन्) मानने की भी सूचना कर दी ।

---

७. “ The Mahabharat ” (published by Bhandarkar Oriental Institute, Poona), Vol. 17, Part I, Introduction, P. LXXXII, footnote 2).

किन्तु भीष्म का वह अनुपम प्रवचन मूळ महाभारत का हीं अंश है; इतनाही नहीं, बल्कि उसके निश्चित दिन तथा तिथियाँ सूचित करने वाले सूक्ष्म संकेत भी महाकवि ने महाभारत में रख छोडे हैं । पाठक इस लेख के अंत में वे दिन देखेंगे, जैसे कि अब निश्चित हुए हैं ।

भीष्मनिधन तिथि की गहन समस्या

अंत में भीष्मनिधन की अत्यंत महत्त्वपूर्ण तिथि तो बहुत ही कूट हो गई थी । इस तिथि का संबंध एक विशेष मूलभूत कालगणनात्मक संकेत से है । क्योंकि, महाभारत में कहे अनुसार भीष्म का निधन उस वर्ष के उत्तरायण प्रारंभ समय पर हुवा था । अतः उस निधन की वास्तविक तिथि महाभारत युद्ध का प्रत्यक्ष (या कमसे कम महाकवि द्वारा संकल्पित) वर्ष निश्चित करने में अति महत्त्व की है । लड़ाई के दसवे रोज संध्यासमय भीष्म का रणभूमि पर पतन हुवा और तभीसे उनकी दारुण शरशय्या प्रारंभ हुई । किन्तु वे इच्छामरणी होने से उत्तरायण के शुभारंभ तक प्राणधारण करने का उन्होंने निर्धार किया । भीष्म के इन शरशय्या के दिनों में ही शेष युद्ध लड़ा गया, अशौचपालन का एक मास गया, युधिष्ठिर का हस्तिनापुर में राज्यारोहण हुवा, और उसके उपरान्त स्वयं भीष्म का महान् धर्मोपदेश हुवा । इन सब घटनाओं के पश्चात् जब भीष्म के प्राणविसर्जन का निर्धारित समय आया, तब स्वयं उनका वह तिथि एवं प्रत्यक्ष वेला सूचित करने वाला निम्म कूटवचन है—

> अष्टपंचाशतं रात्र्यः शयानस्याद्य मे गताः ।
> शरेषु निशिताग्रेषु यथा वर्षशतं तथा ॥
> माघोऽयं समनुप्राप्तो मासः सौम्यः युधिष्ठिर ।
> त्रिभागशेषः पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति ॥
> (अनुशासन पर्व १६७।२७,२८)

“ तीक्ष्ण अग्र के बाणों पर शयन करते मेरी अब अट्ठावन रात्रियाँ बीती है; यह समय एक सौ वर्षों के समान प्रतीत होता है । युधिष्ठिर, माघ का यह सौम्य मास प्राप्त होकर पक्ष शुक्ल है; और वह (याने, कुछ भाष्यकारों के मत से वह माघ मास, तथा कुछ अन्य विद्वानों के मतानुसार वह शुक्ल पक्ष) इस समय त्रिभागशेष है । ” यहाँ मैंने ‘ त्रिभागशेष ’ का स्पष्टीकरण जानबूझकर किया नहीं; क्योंकि उसीमें एक विलक्षण कूट है । उस शब्द का साधारणतया “ जिसका तीन–चौथाई अंश अभी शेष है ” ऐसा अर्थ किया जाता है ।

भीष्म के इस वचन में शरशय्या की अट्ठावन रात्रियाँ, माघ मास तथा शुक्ल पक्ष का स्पष्ट उल्लेख है । किन्तु प्राचीन एवम् अर्वाचीन विद्वानों के अनेकानेक स्पष्टीकरणों में शरशय्या की ये अट्ठावन रात्रियाँ पूर्ण नहीं गिनी जा सकती थीं; और यदि उनकी गिनती किसी प्रकार पूरी कर भी ली जाती थी तो उधर निधन के समय शुक्ल पक्ष के स्थान पर कृष्ण पक्ष आता था । मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी को जो युद्धारंभ मानते हैं उनकी गिनती प्रथम देखिये । इनके हिसाब से युद्ध का लगातार दसवा दिन आगले कृष्ण पक्ष के पंचमी को आता है; उस रोज भीष्म का रणभूमीपर पतन हुवा । अब वहाँसे अट्ठावन रात्रि गिननेपर भीष्मनिधन दो माह बाद के कृष्ण पक्ष में ही आवेगा (जो माघ मास का होगा, बशर्ते कि हम अमावास्यान्त मासपद्धति मानेंगे); जब कि

स्वयं भीष्म शुक्र पक्ष बता रहे हैं। इस आपत्ति से छुटकारा पाने हेतु प्रसिद्ध भाष्यकार आचार्य नीलकंठ आदि कुछ विद्वान शरशय्या की कुल रात्रियाँ किसी प्रकार कम कर भीष्मनिधन शुक्र पक्ष में बैठानेका प्रयास करते हैं। इस हेतु, आचार्य नीलकंठ प्रथम ' अष्टपंचाशतं ' इस एक शब्दका विग्रह ' अष्टपंच अशतं ' करते हैं; फिर ' अशतं 'का अर्थ ' सौ से कम ' ऐसा कर, ' अष्टपंच ' में जो दो संख्या हैं उनका क्रम उलटा कर ' अष्टपंच ' का ही अर्थ ' पाँच पर आठ यानी अट्ठावन ' करते हैं। इस प्रकार ' अष्टपंचाशतं ' का कुल अर्थ ' सौ में अट्ठावन कम ' अर्थात् बयालीस होता है। अब नीलकंठ के मतानुसार युद्धारंभ तिथि मार्गशीर्ष शुक्र की ठीक एकादशी न होकर त्रयोदशी (या चतुर्दशी) होनेसे भीष्मपतन की उनके अनुसार तिथि बादकी कृष्ण अष्टमी आती है; जहाँसे बयालीस रात्रियाँ गिननेपर नीलकंठ भीष्मनिधन तिथि माघ शुक्र पंचमी पर ले आते हैं। किन्तु इतना करनेपर भी उक्त पंचमी के रोज न तो वह शुक्र पक्ष, न हि माघ मास ' त्रिभागशेषः ' (जिसका तीन चौथाई हिस्सा शेष है) कहा जा सकता है। अतः वे उस शब्द का अर्थ ' त्रिभाग-मात्रः ' अर्थात् ' जिसका एक तिहाई भाग बीतकर दो तिहाई शेष है ' करते हैं, और फिर उसका संबंध उस शुक्र पक्षसे लगाते हैं।[८]

कुछ दूसरे लेखक, शरशय्या की रात्रियाँ कम करने के बजाय उनकी गिनती लड़ाई के दसवे दिन (जिस रोज रणभूमि पर भीष्मपतन हुवा) के स्थानपर उसके प्रथम दिन से ही करना चाहते हैं।[९] वे प्रथम पंक्ति का अर्थ करते हैं कि, भीष्म ने आखरी बार नींद लेने बाद तब तक ५८ रात्रियाँ बीत गई थी। इसका मतलब यह होता है कि, अपने निधनसमय तक भीष्म ने ' बिना नींद ' की अट्ठावन रात्रियाँ बिताई थी। इसके बाद उक्त लेखक कहते हैं कि भीष्म ने न केवल लड़ाई के दसवे दिन हुए उनके पतन से ही नींद खोई थी, अपितु लड़ाई के प्रारंभ दिन से ही कौरव सेनापति के नाते अत्यंत चिन्ताग्रस्त रहनेसे उनको रात्रि में नींद नही आती थी ! किन्तु, उसी श्लोक के द्वितीय पंक्ति में ' शरेषु निशिताग्रेषु ' (अर्थात् ' तीक्ष्ण बाणों की शय्यापर ') ऐसे स्पष्ट शब्द हैं उसका हम क्या करेंगे ? निःसंदेह, उन शब्दों का संबंध दसवे दिन के भीष्मपतन से ही है, जबसे उस दिन की लड़ाई में उनके शरीर में प्रविष्ट तीक्ष्ण बाणों द्वारा बनी भयानक शय्या पर भीष्म का तीव्रतम वेदना सहित पडे रहना प्रारंभ हुवा था।

इनके अलावा कुछ अन्य विद्वान (जिनमें पुणें की भांडारकर ओरिएंटल रिसर्च संस्था के संपादक भी शामिल हैं) पूरी अट्ठावन रात्रियाँ गिनकर माघ कृष्ण पक्ष में पहुँचते हैं; और फिर वहाँ कृष्ण पक्ष को ही शुक्र पक्ष मान लिया जावे ऐसा विलक्षण आग्रह करते हैं ! उनका तर्क है कि यदि वह पक्ष वास्तव में शुक्र होता तो भीष्म वैसा स्पष्ट शब्दों में कहते, ' शुक्रो भवितुम् अर्हति ' ऐसा नही कहते; ' भवितुम् अर्हति ' कहा होने से यह दिखता है कि वह पक्ष प्रत्यक्ष रूप से शुक्र न होते हुए भी शुक्र माना जा सकता था, जिसका स्पष्टीकरण ' त्रिभागशेषः ' से प्राप्त हो सकता

---

८. किन्तु महाभारत पर अपने भाष्य में इतरत्र कुछ स्थलों पर नीलकंठ शुक्ल पंचमी सिद्ध करने हेतु इस प्रकार मल्लीनाथी करने के बजाय भीष्मनिधन तिथि के रूप में परंपरागत माघ शुक्ल अष्टमी का भी संमतिदर्शक उल्लेख करते हैं।

९. देखिये, प्रो. राघवन, पूर्वोल्लेखित, पृष्ठ १९; तथा वाराणसी के महामहोपाध्याय पंडित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी कृत " गीताप्रवचन-गीताव्याख्यानमाला " (हिन्दु विश्वविद्यालय नेपाल राज्य, संस्कृत-ग्रंथमाला) खंड ४, १९६२, पृष्ठ ७९-८५.

है। भांडारकर संस्था की इस संबंधमें टिप्पणी के अनुसार भीष्मनिधन तिथि माघ कृष्ण चतुर्थी होकर उस रोज कृष्ण पक्ष के केवल चार ही दिन अर्थात् करीब एक चौथाई हिस्सा ही बीता था तथा तीन चौथाई शेष था, अतः उस समय शुक्र पक्ष ही चालू माना जा सकता है।[१०] किन्तु पाठक इस पुस्तिका में आगे जाकर " त्रिभागशेषः " तथा " शुक्रो भवितुम् अर्हति " का रहस्यमय अर्थ एवम् उस संदर्भ में भीष्मनिधन की प्रत्यक्ष शुक्र पक्ष में ही आनेवाली वास्तविक तिथि देखेंगे।

उधर, जो श्रीकृष्णवचनानुसार अमावास्या पर ही युद्धारंभ मानते रहे, उनके हिसाब से भीष्मपतन अर्थात् शरशय्याप्रारंभ दसवे रोज यानी मार्गशीर्ष शुक्र नवमी को आता है। वहाँसे अट्ठावन रात्रियाँ गिनकर हम माघ शुक्र अष्टमी पर भीष्मनिधन बता सकते हैं। और उस दिन वह शुक्र पक्ष तो नहीं किन्तु माघ मास ' त्रिभागशेष ' (तीन चौथाई शेष) कहा भी जा सकता है, क्योंकि उसका एक सप्ताह बीतकर तीन शेष थे (बशर्तें कि हम अमावास्यान्त मासपद्धति का अनुसरण करते हों)। इसी आधार पर कई भारतीय पंचांगों में भीष्मनिधन तिथि माघ शुक्र अष्टमी

---

१०. देखिये, भांडारकर संस्था का Mahabharat, Vol. 17, Anushasana Parva, Part I, Introduction P. LXXXIII-IV, " The statement पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति is intriguing. If the fortnight had actually been bright, Bhishma would have clearly said so. He would not have said that the *pakṣa* deserved to be regarded as *śukla*. The implication seems to be that the *pakṣa*, though not actually *śukla*, deserved to be regarded as *śukla*. And the reason for this is suggested by the word *tribhāgaśeṣaḥ*. The *pakṣa* was *kṛṣṇa*, but, since three parts of it had still remained—only one part having elapsed—it could as well be regarded as *śukla* (that is, as the continuation of *śukla*). The *kṛṣṇa-pakṣa* was *tribhāgaśeṣa*, that is to say, only one fourth of it had elapsed. One fourth of a fortnight is 3.75 days. Therefore the date indicated in 153/28 would correspond to *Māgha-kṛṣṇa-caturthī*. " इसी प्रकार का युक्तिवाद श्री (के. व्ही.) अभ्यंकर ने भी दिया है, देखिये उनका लेख "The Date and Time of the Mahabharat War" (*Annals of the Bhandarkar Oriental Institute, Poona*, XXV, PP. 116--136)। किन्तु इनके मत में भीष्मनिधन तिथि माघ कृष्ण (चतुर्थी न होकर) पंचमी है, जिस दिन उस पक्ष का (एक चौथाई के स्थान पर) एक तिहाई हिस्सा बीता कहा जा सकता है। अतः श्री अभ्यंकर को उक्त युक्तिवाद के साथ साथ ' त्रिभागशेष ' का अर्थ भी ' त्रिभागमात्र ' करना पडा। वे लिखते हैं, " Although the day (dark 5th of Magha) on which he passed was a day of the dark fortnight, still, because only a third of that dark fortnight was gone and two-thirds still remained, it was looked upon as a supplement of the bright or first fortnight."

को बताई भी जाती है।[11] किन्तु इसमें आपत्ति यह है कि, इस गणनानुसार लड़ाईका चौदहवा दिन शुक्र पक्ष के समाप्ति के दिनों में आकर उसकी उत्तररात्रि में चन्द्रोदय संभव नहीं।

अंततोगत्वा पंडित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी निष्कर्ष निकालते हैं कि, इस गहन समस्या का पूरा हल संभव न होकर, महाभारत के ये संख्यादर्शक कूटश्लोक या तो किसी गुप्त परिभाषा में होकर उनका वास्तविक अर्थ अभीतक किसी को समझ में ठीकठीक नही आया है, अथवा उन श्लोकों में लेखकों के प्रमाद से कुछ अशुद्धियाँ आ गई हैं।[12] इसी प्रकार महाराष्ट्र के ख्यातिप्राप्त भारताचार्य चिं. वि. वैद्य लिखते हैं: "भारतीय युद्ध मार्गशीर्ष शुक्ल १३ को प्रारंभ हुवा ऐसा माना तो भीष्म का पतन मार्गशीर्ष कृष्ण ८ पर होकर वहाँसे अठ्ठावन रात्रियाँ गिननेसे माघ कृष्ण ८ आती है, यह कैसा कूट है? ......यह विरोध कैसा? इसका समाधान प्रायः असंभव ही है। लड़ाई का प्रारंभ मार्गशीर्ष में न मानते श्रीकृष्ण के वचनानुसार कार्तिक अमावास्या पर माना तो और भी समस्या खडी होती है .... जयद्रथ वध के रोज उत्तररात्रि में चन्द्रोदय संभव नही होगा। उस रोज करीब पूर्णिमा या शुक्ल त्रयोदशी आती है। यानी उत्तर रात्रि में चन्द्र के उदय के बजाय उलटा अस्त होकर अंधेरा होगा; मार्गशीर्ष शुक्ल ८ को युद्धारंभ माना तो ५८ दिन पूरे हो सकेंगे, किन्तु उस रोज के नक्षत्र से १८ दिन बाद बलराम के वचनानुसार श्रवण नक्षत्र सिद्ध नही होगा ....इस प्रकार यह सब घोटाला अनुशासन पर्व के ५८ रात्रियाँ तथा ५० रात्रियाँ के वचनों से हुवा है। माघ कृष्ण पक्ष में पंचमी तक शुक्ल पक्ष माना जा सकेगा; किन्तु उस समय त्रिभागशेष पक्ष नही कहा जा सकेगा। अठ्ठावन रात्रियाँ यानी करीब दो माह होते हैं;

११. और आश्चर्य की बात है कि इन्हीं पंचांगों में विसंगति का कोई ख्याल नहीं करते गीताजयंती अमावास्या के स्थान पर मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी को बताते हैं! भीष्मनिधन तिथि के रूप में माघ मास के शुक्ल अष्टमी का एक बहुत पुराना उल्लेख "भारत सावित्री" के (जो एक अनामिक छोटीसी संस्कृत पद्यरचना है) 'माघमासे सिताष्टमी' इन शब्दों में मिलता है। किन्तु स्वयं 'भारत सावित्री' में भीष्म का रणभूमि पर पतन मार्गशीर्ष पूर्णिमा के बाद आनेवाली कृष्ण सप्तमी को बताया है; जहाँसे माघ शुक्ल अष्टमी तक अठ्ठावन रात्रि पूर्ण नही होती। इसलिये, कभी कभी उक्त वचन में 'सिताष्टमी' के पहिले अवग्रह मानकर 'असिताष्टमी' भी पढ़ा जाता है; जिसका अर्थ (माघ मास की) कृष्ण अष्टमी होता है। किन्तु महाभारत में शुक्ल पक्ष का जो स्पष्ट उल्लेख है उससे इसका विरोध आता है। वस्तुतः 'भारत सावित्री' के मूल शब्द निश्चित करना अत्यंत ही मुष्किल है; उसके श्लोक हमें अधिकांशतः अन्य रचनाओं में उद्धरण स्वरूप उपलब्ध होते हैं। (देखिये "History of Dharmashastra" by Dr. Kane, Vol. III, PP. 909–10, footnote 1773)। 'भारत सावित्री' के विश्वसनीयता के संबंध में श्री. अभ्यंकर (उपरोल्लेखित) के उद्‌गार देखिये, "The evidence of the Bharata–Savitri, which is older than the commentators and later than Sauti is certainly more reliable than any other evidence, *provided it does not conflict with any Mahabharata passage.*" (*Italics mine*).

१२. पूर्वोल्लेखित।

अतः माघ कृष्ण अष्टमी ही आवेगी। अस्तु, कोई तोभी एक स्थलके वचन असत्य मानने होंगे। या तो युद्धपर्व में आये वचन असत्य हैं या फिर अनुशासन पर्व के ये वचन असत्य, इस प्रकार यह विरोध अपरिहार्य है ऐसा मानना पडता है।"[13] इसी आशय के उद्‌गार डॉ. काणे (पूर्वोल्लेखित) द्वारा भी व्यक्त किये गये हैं।

महाभारत के युद्धवर्णन का रहस्य

किन्तु अब इन तथा अन्य भी कई कालगणनात्मक समस्याओं का पूरा समाधान महाभारत काव्य के कुछ गूढ रहस्यों के आधारपर प्राप्त हो रहा है। इसमें एक महत्त्वपूर्ण रहस्य यह है कि, इस महाकाव्य के रचयिता ने दिया हुवा विस्तृत युद्धवर्णन प्रत्यक्ष लड़ाई एक एक अवकाश दिन छोडकर होने की विलक्षण कल्पना से किया गया है। इसी आधारपर महाकवि ने युद्धदिनों की एवं तिथियों की गणना की; किन्तु अत्यन्त कुशलता से संदिग्ध शब्दरचना के जाल में वह रहस्य छिपा रखा। फिर भी उसके ऐसे मार्मिक प्रमाण भी महाभारत के श्लोकों में ही रख छोडे जो सूक्ष्म अध्ययन से प्राप्त हो सकते हैं।

लड़ाई के प्रतिदिन दोनो सेनाओं की जो नई नई व्यूहरचना होती थी उसकी माहिती, व्यूहों के कुछ विशिष्ट नामों सहित, महाकवि ने दी है। पांडवों ने लड़ाई के दूसरे रोज अपनी सेना की रचना 'क्रौंचारुण' व्यूह में, तीसरे रोज 'अर्धचन्द्राकार' व्यूह में, पाँचवे रोज 'श्येन' व्यूह में, छठे रोज 'मकर' व्यूह में, सातवे रोज 'वज्र' व्यूह में, आठवे रोज 'शृंगाटक' व्यूह में, ग्यारहवे रोज फिर 'क्रौंच' व्यूह में, तथा बारहवे रोज 'मंडलार्ध' व्यूह में की थी। उधर कौरव सेना के व्यूह का प्रकार तीसरे रोज 'गरुड', चौथे रोज व्याल', पाँचवे रोज 'मकर', छठे रोज 'क्रौंच', सातवे रोज 'मंडल' आठवे रोज एक 'विशाल घोर महाव्यूह', नववे रोज 'सर्वतोभद्र', ग्यारहवे रोज 'शकट', बारहवे रोज रणभूमि के एक क्षेत्र में (जहाँ द्रोण का आधिपत्य था) 'गरुड' तथा दूसरे हिस्से में (जहाँ सुशर्मा का नेतृत्व था) 'चंद्राकार रथ व्यूह', और तेरहवे रोज सुप्रसिद्ध 'चक्र व्यूह' था (जिसमें फँस कर अभिमन्यु की मृत्यु हुई)। दोनो सेना अति विशाल थी। प्रतिदिन युद्धारंभ सूर्योदय पर (एक दो रोज उसके भी कुछ पूर्व) होता था। प्रति दिन लड़ाई बंद होने के बाद, इन प्रचंड व्यूहरचनाओं के पूर्वाभ्यास (रिहर्सल्स्) स्पष्टतया आवश्यक थे, ताकि अगले युद्धदिन पर प्रारंभ में ही सेना रणक्षेत्र पर तुरन्त इच्छित रचनानुसार तैयार खडी हो सके। बीचके अवकाशदिनों के अलावा अन्य कौनसे समय ये पूर्वाभ्यास हो सकते थे? क्या दिनभर के लड़ाईसे अत्यंत थकी हुई सेना उसी रात्रि के समय में इस प्रकार के पूर्वाभ्यास कर फिर सूर्योदय से लड़ने के लिये खडी होना संभव माना जा सकता है? फिर इन्हीं अवकाश दिनों में योद्धाओं को आवश्यक विश्राम एवं वैद्यकीय सेवा प्राप्त होकर, आहत सैनिकों के कारण सेना की टुकडियों की आवश्यक पुनर्रचना भी होती होगी। इसके अलावा, भीष्मपतन के बाद द्रोण को कौरव सेनापति बनाया गया; तथा द्रोण के बाद कर्ण को और कर्ण के बाद शल्य को। महाकवि ने सेना के समक्ष इनको किये गये विधिवत् अभिषेकों का विस्तृत वर्णन सहेतुक दिया है। द्रोण का अभिषेक इस प्रकार हुवा था–

१३. "महाभारताचा उपसंहार" (मराठी), पृष्ठ १२७-१२८ (भाषांतर मेरा)।

अथाभिषिषिचुर्द्रोणं दुर्योधनमुखा नृपाः
सैनापत्ये यथा स्कन्दं पुरा शक्रमुखाः सुराः ॥ द्रोणपर्व ७-६ ॥
ततो वादित्रघोषेण शंखानां च महास्वनैः
प्रादुरासीत्कृते द्रोणे हर्षः सेनापतौ तदा ॥७॥
ततः पुण्याहघोषेण स्वस्तिवादस्वनेन च
संस्तवैर्गीतशब्दैश्च सूतमागधबंदिनाम् ॥ ८॥
जयशब्दैर्द्विजाग्र्याणां सुभगानर्तितैस्तथा
सत्कृत्य विधिना द्रोणं मेनिरे पाण्डवाञ्जितान् ॥ ९॥

" तदनन्तर जैसे पूर्वकाल में इन्द्रादि देवों ने स्कन्द को सेनापतिपद का अभिषेक किया था, वैसाही दुर्योधनादि राजाओं ने द्रोणाचार्य को अभिषेक किया– ६. मधुर वाद्य ध्वनि तथा महान् शंखगर्जना के साथ द्रोणाचार्य सेनापतिपद पर आसीन हो जाने से सबको आनंद हुआ– ७. पुण्याहवाचन, स्वस्तिवाचन आदि धार्मिक विधि, भाट–बंदिजनों द्वारा स्तुतिगान, श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा जयजयकाररूप आशीर्वचन, नृत्यांगनाओं के नृत्य आदि सब प्रकारों से द्रोणाचार्य का विधिवत् सत्कार कर कौरवों के मनमें विश्वास हो गया कि अब पांडव निश्चितही पराजित हो जायेंगे–९ "।

इसी प्रकार कर्ण के अभिषेक का भी वर्णन है–

सैनापत्येन सत्कर्तुं कर्णं स्कन्दमिवामराः
ततोऽभिषिषिचुः कर्णं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ कर्णपर्व १०।४३ ॥
दुर्योधनमुखा राजन् राजानो विजयैषिणः
शातकुम्भमयैः कुम्भैर्माहेयैश्चाभिमन्त्रितैः ॥ ४४ ॥
तोयपूर्णैर्विषाणैश्च द्विपखड्गमहर्षभैः
मणिमुक्तायुतैश्चान्यैः पुण्यगन्धैस्तथौषधैः ॥ ४५ ॥
औदुम्बरे सुखासीनमासने क्षौमसंवृते
शास्त्रदृष्टेन विधिना सम्भारैश्च सुसम्भृतैः ॥ ४६ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्तथा शूद्राश्च सम्मताः
तुष्टुवुस्तं महात्मानमभिषिक्तं वरासने ॥ ४७ ॥
ततोऽभिषिक्तो राजेन्द्र निष्कैर्गोभिर्धनेनच
वाचयामास विप्राग्र्यान् राधेयः परवीरहा ॥ ४८ ॥

" जैसा (पूर्वकाल में) देवों ने स्कंद को अपना सेनापति बनाया था, उसी प्रकार दुर्योधन तथा उसके अधीनस्थ विजयाभिलाषी राजाओं ने कर्ण को अपना सेनापति बनाकर उसका सत्कार करने की इच्छा से शास्त्रोक्त विधि द्वारा उस पर अभिषेक किया। स्वर्ण तथा मिट्टी के बर्तनों में अभिमंत्रित जल रखा था; उसके अलावा हाथीदाँत तथा गेंडे एवम् बैल के सींगों के बने पात्रों में भी मणि, मोती, पवित्र सुगन्धी पदार्थ तथा वनस्पति मिश्रित कर, जल रखा था। औदुंबर के सुंदर आसन पर, जिस पर मृदु रेशम का कपडा बिछाया था, कर्ण आराम से बैठा था; शास्त्रीय

विधि से उपरोक्त सुसज्जित सामग्री द्वारा कर्ण का अभिषेक संपन्न हुवा; और इस प्रकार उच्चासन पर स्थित अभिषिक्त सेनापति महात्मा कर्ण का चारों वर्णों के आदरणीय व्यक्तियों ने स्तुतिगान किया। फिर अभिषेक विधि समाप्त होने पर शत्रुनाशक राधापुत्र कर्ण ने श्रेष्ठ विप्रों को स्वर्णमुद्राएँ, गौएँ, तथा अन्य धनसंपत्ति भेट कर उनसे स्वस्तिवाचनरूप आशीर्वाद प्राप्त किया।"

क्या ये ऐसे अभिषेक उक्त अवकाश-दिनों के अलावा और किसी समय हो सकते थे[१४]? कहने की आवश्यकता नहीं कि, दो युद्ध दिनों के बीच किसी रात्रि समय में, थकी हुई निद्रावश सेना को उसके अत्यावश्यक विश्राम से वंचित रखकर, वे नहीं हुवे होंगे। संजय ने धृतराष्ट्र को युद्ध का पहिला वृत्तांत भीष्मपतन के बाद सुनाया। उसमें लड़ाई के प्रथम दस दिनतक का समाचार था। वह कहने के लिये संजय रणक्षेत्र से हस्तिनापुर गया था। इसी वृत्तांत में विश्वप्रसिद्ध गीता संवाद भी समाविष्ट था, जो उसका प्रथम प्रकाशन कहा जा सकता है। संजय ने वह वृत्तांत भीष्मपतन के बाद आनेवाले अवकाश-दिन पर धृतराष्ट्र को निवेदन किया था[१५]। निवेदन के पश्चात् संजय तुरन्त आगले दिन की लड़ाई में उपस्थित होने हेतु कुरुक्षेत्र वापिस लौट आया।

अवकाश दिनों में एक अपवाद

यद्यपि लड़ाई के प्रतिदिन पश्चात् एक अवकाश-दिन आता था, (जिसके अधिक प्रमाण आगे दिये हैं) उसमें एक अपवाद भी था। चौदहवे और पन्द्रहवे दिनों के बीच अवकाश-दिन नही था। उसका कारण भी महाभारत में दिया है। चौदहवे रोज शाम को अर्जुन ने अभिमन्युवध के बदले की अपनी घोर प्रतिज्ञा पूर्ण करते हुवे सूर्यास्त के पूर्व जयद्रथ का वध किया। किन्तु उस दिन उसके पश्चात् भी अंधेरी रात्रि में लड़ाई चालू रही। यहाँ तक कि उसमें मशालें जलाकर प्रकाश किया गया, जिसका मार्मिक वर्णन महाकवि ने दिया है। उसमें मध्यरात्रि तक दोनों सेनाएँ अत्यंत थक गईं; और केवल दया से प्रेरित होकर पांडवों की ओर से अर्जुन ने प्रस्ताव रखा कि घडी दो घडी युद्ध स्थगित कर दोनों सेना रणभूमिपर ही जैसा तैसा विश्राम करें, तथा उत्तररात्रि में चन्द्रोदय होनेपर उसके प्रकाश में फिर लड़ना चालू हो। कौरव सेनापति द्रोणाचार्य ने अपनी सेना की भी अवस्था तथा इच्छा देखकर वह प्रस्ताव मान्य किया; और उभय सेनाओं ने अर्जुन को धन्यवाद देते हुए किंचित् समय विश्राम कर चन्द्रोदय होते ही लड़ना फिर चालू कर दिया[१६]। किन्तु कौरवाधिपति दुर्योधन ने, जो पहिले से ही जयद्रथवध के कारण अत्यंत उदास था, शत्रुपक्ष से आया ऐसा विश्राम-प्रस्ताव स्वीकार करनेपर द्रोणाचार्य को अत्यंत दोष दिया; यहाँ तक कि उसने द्रोण की ईमानदारीपर भी संशय किया। उसने कहा—

न मर्षणीयाः संग्रामे विश्रमन्तः श्रमान्विताः।
सपत्ना ग्लानमनसो लब्धलक्ष्या विशेषतः ॥ (द्रोणपर्व १८५।२)

१४. महाभारत के श्लोकों में इसका पर्याप्त प्रमाण है। इसका कुछ अंश आगे दिया है।
१५. इसका भी महाभारत में मार्मिक प्रमाण है।
१६. पाठकों को स्मरण होगा कि यह वही चन्द्रोदय है जिसके कारण युद्धारंभ तिथि निश्चित करने में विद्वान चक्कर में पडे हैं। इस चन्द्रोदय का महाभारत में दिया अत्यंत सुंदर वर्णन आगे उद्धृत किया है।

यत्तु मर्षितमस्माभिर्भवतः प्रियकाम्यया।
स एते परिविश्रान्ताः पाण्डवा बलवत्तराः॥ ३॥
सर्वथा परिहीनाः स्म तेजसा च बलेन च।
भवता पाल्यमानास्ते विवर्धन्ते पुनः पुनः॥ ४॥
स भवान् मर्षयत्येतांस्त्वत्तो भीतान् विशेषतः।
शिष्यत्वं वा पुरस्कृत्य मम वा मन्दभाग्यताम्॥ ८॥

"युद्ध में शत्रु, विशेषतः जो लड़ने में अत्यंत कुशल हो, जब अत्यंत थककर उद्विग्नचित्त होता हुवा विश्राम की इच्छा करता हो, तब उसके प्रति उदारबुद्धि नही बतानी चाहिये—२. इस समय जो हमने इनको उदारता बताई है वह केवल आपके मन में (उनका) प्रिय करने की इच्छा से है; जिसका परिणाम यह हुवा है कि ये पाण्डव सैनिक अब अच्छी प्रकार विश्राम कर पुनः और भी प्रबल हो उठे हैं—३. इधर हमारे पक्ष का तेज तथा बल सर्वथा कम हो रहा है; और वे पाण्डव आपसे संरक्षण पाकर बारबार सामर्थ्यवान होते जा रहे हैं—४. (आप स्वयं संपूर्ण शस्त्रास्त्रों के ज्ञाता होते हुवे भी) आप इन पाण्डवों को, यद्यपि वे आपसे (युद्ध में) विशेष भयभीत रहते हैं, या तो उनके पुराने शिष्यत्व का ख्याल कर, या मेरे मन्दभाग्य के ही कारण कहिये, क्षमा करते जाते हैं—८." दुर्योधन के इन कटुवचनों से अत्यंत विव्हल होकर द्रोणाचार्य ने तत्काल प्रतिज्ञा की कि अब (चन्द्रोदयपर) चालू होनेवाली लड़ाई, अंतिम जय (या मृत्यु) तक; वे विना किसी स्थगन के चालू ही रखेंगे।

निहत्य सर्वपञ्चालान् युद्धे कृत्वा पराक्रमम्॥ १२॥
विमोक्ष्ये कवचं राजन् सत्येनायुधमालभे॥ १३॥

"राजन् (दुर्योधन), सत्य की शपथ लेकर तथा अपने धनुष्य को स्पर्श कर मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि, अब लड़ाई में पराक्रम करके समस्त पांचालों का वध किये विना मैं कवच नहीं उतारूँगा"। इस प्रकार चन्द्रोदय से फिर प्रारंभ हुई भीषण लड़ाई चलते चलते शीघ्र ही अरुणोदय हुवा, तब क्षण दो क्षण सभी ने विधिवत् संध्यावंदन करने के अलावा, लड़ना चालू ही रखा।

अथ चन्द्रप्रभां मुष्णन्नादित्यस्य पुरःसरः।
अरुणोऽभ्युदयांचक्रे ताम्रीकुर्वन्निवाम्बरम्॥ १८६।२॥
ततो रथाश्वांश्च मनुष्ययाना-
न्युत्सृज्य सर्वे कुरुपांडुयोधाः।
दिवाकरस्याभिमुखं जपन्तः
संध्यागताः प्राञ्जलयो बभूवुः॥ ४॥
ततो द्वैधीकृते सैन्ये द्रोणः सोमकपाण्डवान्।
अभ्यद्रवत् सपाञ्चालान् दुर्योधनपुरोगमः॥ ५॥

"तदनन्तर सूर्य के पहिले दृश्यमान होनेवाले अरुण का उदय हुवा, जिससे चन्द्र प्रकाश क्षीण होकर आकाश में लालिमासा रंग फैल गया—२. उस समय सब कौरव पाण्डव योद्धाओं ने अपने रथ, अश्व तथा मनुष्ययान (पालकी आदि) छोडकर, सूर्य की दिशा में अभिमुख होते हुए हाथ

जोडकर, जप द्वारा संध्यावंदन किया-४. फिर द्रोणाचार्य ने अपनी सेना के दो विभाग किये, और दुर्योधन के आगे होकर (उसके देखते हुए) सोमक, पाण्डव तथा पांचालों पर धावा कर दिया-५।" अरुणोदय के बाद यथाक्रम शीघ्र ही प्रत्यक्ष सूर्योदय हुवा, किन्तु दोनों सेना रणभूमि पर ही डटी रहीं।

तथा संसक्तयुद्धं तदभवद् भृशदारुणम्।
अथ संध्यागतः सूर्यः क्षणेन समपद्यत॥ १८६। ६०॥
ते तथैव महाराज दंशिता रणमूर्धनि।
संध्यागतं सहस्रांशुमादित्यमुपतस्थिरे॥ १८७। १॥
उदिते तु सहस्रांशौ तप्तकाञ्चनसप्रभे।
प्रकाशितेषु लोकेषु पुनर्युद्धमवर्तत॥ २॥
द्वन्द्वानि तत्र यान्यासन् संसक्तानि पुरोदयात्।
तान्येवाभ्युदिते सूर्ये समसज्जन्त भारत॥ ३॥

"इस प्रकार वह अत्यंत दारुण घमासान युद्ध चलते चलते शीघ्र ही प्रातःसंध्या का समय प्राप्त होकर सूर्य का उदय हुवा-१८६।६० महाराज (धृतराष्ट्र), तब वे सब योद्धा वैसेही कवच धारण किये हुए रणभूमिपर ही प्रातः संध्यासमय के सहस्रांशु सूर्यभगवान की (स्तोत्र द्वारा) प्रार्थना करने लगे-१८७/१. तप्तकांचन के समान शोभायमान सूर्य बिंब का पूर्ण उदय हो जाने पर सब दूर प्रकाश छा गया और पुनः युद्ध चालू हो गया-२. सूर्योदय के पूर्व जिन योद्धाओं में द्वंद्व युद्ध चल रहा था, वेही सूर्योदय के बाद फिर परस्पर भिड गये-३"।

इस प्रकार महाकवि ने पूरे विस्तार से दिये इस मार्मिक वर्णन के अनुसार चौदहवे रोज लड़ाई रातभर भी चलती रही, और वह रात्रि समाप्त होते ही विना अवकाशदिन के सीधी पन्द्रहवे रोज में प्रवेश कर गई। अन्ततोगत्वा उस दिन द्रोणाचार्य का रणभूमिपर निधन हो गया।

अंतिम युद्ध दिवस

किन्तु अवकाशदिनों में इस अभाव की पूर्ति महाकवि ने एक अन्य विलक्षण कूट कल्पना से कर दी। यह एक आम धारणा है कि भीम-दुर्योधन का अंतिम गदायुद्ध, जिसमें दुर्योधन मारा गया, शल्यवध के ही दिन हुवा। कुछ श्लेषात्मक शब्दरचना के द्वारा महाभारत में यह आभास पैदा किया गया है। किन्तु संबंधित श्लोकों के सूक्ष्म अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गदायुद्ध शल्य-वध के दूसरे रोज हुवा। जिस दिन मध्यान्ह के करीब शल्य का वध हुवा, उस दिन उसके पश्चात् कौरव सेना पूरी तौर से नष्टभ्रष्ट हो गई, तथा स्वयं दुर्योधन रणभूमि छोडकर एक सरोवर के पानी में जाकर छिप गया। फिर उस दिन सूर्यास्त के बाद, पूर्वरात्रिकाल में, पांडवों को कुछ व्याधों द्वारा उसका पता लगा। वे सरोवर के पास आये और उन्होंने दुर्योधन को बाहर आकर युद्ध करने का आव्हान दिया। दुर्योधन अंदर से ही प्रत्युत्तर देता रहा। काफी देर तक यह कहासुनी चलती रही। और यहाँ रहस्य यह है कि, अंतमें दुर्योधन पानी से बाहर आकर भीम से गदायुद्ध लड़ने खडा हुवा तब तक वह रात्रि समाप्त होकर दूसरा दिन प्रारंभ हो चुका था। इसी समय नारद के

आग्रह पर बलराम तीर्थयात्रा समाप्त कर अपने ही दोनों शिष्य भीम तथा दुर्योधन का गदायुद्ध देखने वहाँ आये। उस रोज गदायुद्ध करीब आधा रोज चलकर भीम के प्रहार से दुर्योधन गिर पडा। उसी आधे दिन को शल्यवध के रोज हुई आधे दिन की लड़ाई में जोडकर महाकवि ने अत्यंत खूबी से प्रत्यक्ष लड़ाई के अंतिम अठारहवे दिन की गिनती पूरी की; और इस प्रकार एक और विलक्षण कूट निर्माण कर रखा !

गदायुद्ध के प्रारंभ समय के वर्णन में रात्रिसमाप्ति को छिपा रखने के अलावा महर्षि व्यास ने उस दिन के विषय में भ्रम निर्माण करने हेतु कुछ अन्य शाब्दिक कूटों का भी उपयोग किया है। शल्यपर्व के प्रारंभ में युद्ध के अंतिम दिनों का अत्यंत संक्षेप में वैशंपायन द्वारा सारांश दिया है; वहाँ निम्न दो श्लोक आते हैं।

ततः शल्यो महाराज कृत्वा कदनमाहवे
ससैन्योऽथ स मध्यान्हे धर्मराजेन पातितः ॥ १० ॥
ततो दुर्योधनो राजा हतबन्धू रणाजिरात् ।
अपसृत्य न्हदं घोरं विवेश रिपुजाद्‌ भयात् ॥ ११ ॥

" हे महाराज (जनमेजय), फिर सेनासहित उस युद्ध में भीषण संहार कर, शल्य मध्यान्ह समय में धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा मारा गया–१०. तत्पश्चात् राजादुर्योधन, जिसके भाई मारे जा चुके थे, रणांगण से भागकर शत्रु के डर से घोर (द्वैपायन) सरोवर में प्रवेश कर गया –११ "। इन श्लोकों के बाद तुरंत निम्न तीसरा श्लोक है–

अथापराण्हे तस्यान्हः परिवार्य सुयोधनः
न्हदादाहूय युद्धाय भीमसेनेन पातितः ॥ १२ ॥

इसका परंपरा से अर्थ लगाया जाता है कि, उसी दिन के (तस्यान्हः) अपराण्ह प्रहर में (अपराण्हे) दुर्योधन को घेरकर तथा युद्ध के लिये उसे सरोवर से बाहर आने का आव्हान देकर भीम ने (गदायुद्ध में) मार गिराया। किन्तु जैसा कि शल्यपर्व में ही आगे जाकर संजय के विस्तृत वर्णन से स्पष्ट होता है, शल्यवध के दिन रात्रिप्रारंभ तक तो पांडवों को दुर्योधन का पता ही नही लगा था। यहाँ शल्यवध के बाद उस रोज घटी हुई उन घटनाओं पर कुछ अधिक विचार उपयुक्त होगा। शल्य मरने के बाद कौरव सेना पूर्णतया नष्ट होकर स्वयं संजय (जो उस युद्ध में कौरवों की ओर से लड़ता था) बंदी बनाया गया। किन्तु उस समय महर्षि व्यास वहाँ उपस्थित होकर उनके आदेश से संजय बंधमुक्त हुवा। इसपर कवच एवं शस्त्र से रहित होकर संजय हस्तिनापुर की ओर चलने लगा। उस समय ' सायान्ह ' समय था ऐसा स्पष्ट कहा है—

अनुज्ञातस्त्वहं तेन न्यस्तवर्मा निरायुधः ।
प्रातिष्ठं येन नगरं सायान्हे रुधिरोक्षितः ॥ (शल्यपर्व २९।४१)

"फिर उनकी अनुज्ञासे तथा शस्त्र कवचादि से रहित होकर मैं (संजय) सायंकाल के समय हस्तिनापुर नगर की ओर चला; उस समय मेरे शरीर से रक्त बह रहा था। " जब संजय एक कोस चला तब उसको रास्ते में दुर्योधन अकेला मिला। उस दयनीय अवस्था में एक दूसरे को देख दोनों को अत्यंत दुःख हुवा। प्रथम तो वे कुछ क्षण अवाक् रह गये। फिर संजय ने दुर्योधन को

संग्राम की अंतिम घटनाओं का वृत्तांत बताया। वह सुनने के बाद दुर्योधन ने अपने पिता धृतराष्ट्र के लिये संजय के पास एक संदेश दिया। इसके उपरान्त दुर्योधन ने समीपस्थ द्वैपायन सरोवर में संजय के देखते प्रवेश कर दिया।

एवमुक्त्वा महाराज प्राविशत् तं महान्हदम् ।
अस्तम्भयत तोयं च मायया मनुजाधिपः ॥ २९। ५४ ॥

" महाराज (धृतराष्ट्र), इस प्रकार कह कर राजा (दुर्योधन) उस महासरोवर में प्रवेश कर गया; और अपनी माया से उसने उसका पानी स्तम्भित कर दिया। " जब सायान्ह में संजय दुर्योधन को जीवित अकेला देख रहा था, और उसके बाद दुर्योधन का सरोवर प्रवेश हुवा, तो उसी रोज अपराण्ह में (जो सायान्ह के पूर्व आता है) भीम-दुर्योधन गदायुद्ध होना किस प्रकार संभव है ?

दुर्योधन सरोवर में छिप जाने के बाद वहाँ कृपाचार्य तथा कृतवर्मा के साथ अश्वत्थामा आया। संजय ने उनको दुर्योधन के छिपने का स्थान बताया। महाप्रतापी दुर्योधन की वह अवस्था देखकर वे तीनों वहाँ शोक करने लगे। इतने में दुर्योधन की सर्वत्र खोज करते हुए विजयी पांडव भी उसी दिशा की ओर आते देखकर, संजय के साथ अश्वत्थामादि तीनों चुपचाप अपने रथों में वहाँसे कौरव शिबिर की ओर चले गये। वहाँ सब पहरेदार कौरवों का विनाश सुनकर रो रहे थे। इस समय सूर्यास्त हो चुका था –

ते तु मां रथमारोप्य कृपस्य सुपरिष्कृतम् ॥ २९।६३ ॥
सेनानिवेशमाजग्मुर्हतशेषास्त्रयो रथाः ।
तत्र गुल्माः परित्रस्ताः सूर्ये चास्तमिते सति ॥ ६४ ॥
सर्वे विचक्रुशुः श्रुत्वा पुत्राणां तव संक्षयम् ॥ ६५ ॥

" मृत्यु से बचे वे तीन वीर मुझे (संजय को) कृपाचार्य के सुसज्ज रथ पर बैठाकर (कौरव) सेना शिबिर पर आये। उस समय सूर्यास्त हो चुका था, और वहाँ सब पहरेदार आपके पुत्रों का (कौरवों का) संपूर्ण विनाश सुनकर भयभीत हुए जोरजोर से रो रहे थे। " इधर पांडव भी सरोवर के आसपास किसी को न देखकर थके हुए वापिस अपने शिबिरों में चले गये। इस प्रकार सूर्यास्त तक तो वे दुर्योधन से मिले भी नहीं थे। इस बीच रोती विलपती कौरव स्त्रियों को युयुत्सु शिबिरों से हस्तिनापुर ले गया; उनके वहाँ पहुचने के समय महाकवि ने फिर सूर्यास्त का उल्लेख किया है —

तैश्चैव सहिताः क्षिप्रमस्तं गच्छति भास्करे ॥ ८७ ॥
प्रविष्टो हास्तिनपुरं वाष्पकण्ठोऽश्रुलोचनः ॥ ८८ ॥

"सूर्य शीघ्रता से अस्त हो रहा था, और उनके साथ उसने (युयुत्सु ने) रुद्ध कंठ एवं अश्रुपूरित नेत्रों से हस्तिनापुर में प्रवेश किया। " उस दिन की दुःखद घटनाओं का जो वृत्तांत उसी रात युयुत्सु ने हस्तिनापुर में बताया, उसमें स्वाभाविक ही गदायुद्ध का, जो उस समय तक हुवा ही नहीं था, कोई उल्लेख नहीं आया।

जब पांडव सरोवर से लौट गये तब अश्वत्थामादि तीनों फिर धीरे धीरे वहाँ वापिस आये। उन्होंने दुर्योधन को पुकारकर उससे वार्तालाप शुरु किया। इसके पूर्व सूर्यास्त हो ही चुका था।

उनका संभाषण चल रहा था उसी समय संयोगवश दिनभर के थके हुए कुछ व्याध वहाँ पानी पीने आये। पूर्वरात्रि के अंधेरे में उनका आगमन अश्वत्थामादि को ज्ञात नहीं हुवा। किन्तु व्याधों ने उस संभाषण से दुर्योधन का सरोवर में छिपना पहचान लिया। धनलोभ से वे तुरन्त पांडव शिबिर में पहुँचे और वहाँ खबर दी। वह मिलते ही पांडव फिर सरोवर पर आये। उनको आते देख अश्वत्थामादि वहाँसे हट गये और दुर्योधन चुपचाप सरोवर के अंदर छिप गया। किन्तु इस बार पांडवों ने उसको आव्हान देकर बाहर बुलाया। उस संभाषण का उल्लेख ऊपर आया ही है।

अतः शल्यपर्व में ही बाद के अध्यायों में संजय द्वारा दिये इस सारे वृत्तांत से स्पष्ट है कि शल्यवध के रोज अपराण्ह में भीम–दुर्योधन गदायुद्ध होने का प्रश्न ही नहीं उठता। फिर उसी शल्यपर्व के प्रथम अध्याय में गदायुद्ध के विषय में "अथापराण्हे तस्यान्हः" कैसा कहा है? क्या इन दो परस्पर विरोधी दिखनेवाले वचनों में से कोई एक प्रक्षिप्त है? नहीं! यहाँ शाब्दिक रहस्य इतना ही है कि, 'अपराण्ह' का प्रयोग यहाँ महर्षि व्यास ने दिन के अपराण्ह प्रहर के आशय में न कर 'अपर+अहन्' अर्थात दूसरा दिन इस अर्थ में किया है![17] अतः 'तस्यान्हः अपराण्हे' का वास्तविक मतलब होता है 'उस (शल्यवध के) रोज के दूसरे दिन'; और इस प्रकार शल्यपर्व के प्रारंभ अध्याय की बाद के अध्यायों से दिखने वाली विसंगति पूर्णतया दूर हो जाती है। प्रथम 'मध्यान्ह' का उल्लेख कर उसके तुरन्त बाद 'अपराण्ह' शब्द का प्रयोग करने से उसके इस द्वितीय असाधारण अर्थ की पाठकों के मन में सहसा कल्पना भी नहीं आती!

इसी संबंध में दूसरी शाब्दिक कूटोक्ति महाभारत के प्रारंभ में मिलती है। समग्र महायुद्ध का सारांश केवल तीन श्लोकों में बताते हुए महाकवि लिखते हैं—

अहानि युयुधे भीष्मो दशैव परमास्त्रवित्
अहानि पञ्च द्रोणस्तु ररक्ष कुरुवाहिनीम् ॥ आदिपर्व २ । ३० ॥
अहनी युयुधे द्वे तु कर्णः परबलार्दनः
शल्योऽर्धदिवसं चैव गदायुद्धमतः परम् ॥ ३१ ॥
तस्यैव दिवसस्यान्ते द्रौणिहार्दिक्यगौतमाः
प्रसुप्तं निशि विश्वस्तं जघ्नुर्यौधिष्ठिरं बलम् ॥ ३२ ॥

"महास्त्रज्ञाता भीष्म ने दस दिन युद्ध किया; द्रोण ने पाँच दिन कौरव सेना का आधिपत्य किया–३०. शत्रुदमन कर्ण ने दो दिन युद्ध किया; तथा शल्य ने आधा दिन; तदनंतर गदायुद्ध हुवा–३१. उसी दिन के अंत में अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा कृतवर्मा ने विजय के विश्वास में सोती हुई पांडव सेना की कत्तल कर डाली–३२."। अब, जैसा कि इन श्लोकों के सूक्ष्म अध्ययन से स्पष्ट होगा, महाभारतकार यहाँ इतना ही कहते हैं कि शल्य की आधे-दिन की लड़ाई के बाद गदायुद्ध हुवा; न कि ये दोनों बातें एक ही रोज हुई। आगे जाकर वे अवश्य कहते हैं कि गदायुद्ध हुवा उसी रोज अश्वत्थामा द्वारा रात्रि में कत्तल हुई; जो ठीक ही है। फिर भी महाकवि ने ये तीनों घटना

१७. महाकवि ने 'अपराह्ण' का 'अपराह्ण प्रहर' से भिन्न कुछ ऐसे ही प्रकार के एक अन्य विलक्षण अर्थ में उपयोग निम्न स्थल पर भी किया है, "अपराह्णेऽपराह्णोऽस्य सूतपुत्रस्य मारिष। छिन्नमञ्जलिकेनाजौ सोत्सेधमपतच्छिरः" (कर्णपर्व, ९१/६४)।

इतनी खूबी से लगातार एक के बाद एक रखी हैं कि, वे तीनों शब्दशः एकही तिथि पर होने का भ्रम सहजही निर्माण हो जाता है। और उसके भी ऊपर फिर, प्रत्यक्ष लड़ाई के समय की गिनती में महाकवि ने सेनापति शल्य द्वारा लड़ाई तथा भीम-दुर्योधन गदा युद्ध इन दोनों घटनाओं को मिलाकर अंतिम एक अठारहवाँ दिन पूरा करनेसे उपरोक्त भ्रम सदियों तक वैसाही चालू रहा!

एक पंक्ति, जो प्रक्षिप्त नहीं है

यह भ्रम विद्वानों में भी कितना दृढमूल बन बैठा है इसका एक उदाहरण देखिये। शल्यवध के दूसरे रोज गदायुद्ध हुवा, इसका महाकवि ने शल्यपर्व के एक पंक्ति में स्पष्ट प्रमाण रखा है। किन्तु उक्त भ्रम के कारण उसीको प्रक्षिप्त माना जाता है। शल्यपर्व में बलराम की तीर्थयात्रा का विस्तृत वर्णन होकर उसमें बलराम जिन क्षेत्रस्थानों पर गये उनके भी क्रमशः पूरे नाम दिये हैं। प्रभास, चमसोद्भेद, उदपान, विनशन आदि से प्रारंभ कर करीब छत्तीस तीर्थों का वहाँ उल्लेख है। इस यात्रा के अंतिम चरण में बलराम वृद्धकन्या क्षेत्र नामक स्थान पर आये थे, तव वहाँ उन्होने शल्यवध का समाचार सुना।

तत्रस्थश्चापि शुश्राव हतं शल्यं हलायुधः ॥ ५२ । २६ ॥
तत्रापि दत्त्वा दानानि द्विजातिभ्यः परंतपः ।
शुश्राव शल्यं संग्रामे निहतं पाण्डवैस्तदा ॥ २७ ॥
समन्तपञ्चकद्वारात् ततो निष्क्रम्य माधवः ।
पप्रच्छर्षिगणान् रामः कुरुक्षेत्रस्य यत्फलम् ॥ २८ ॥

"वहीं पर बलराम ने शल्य मारा जानेका समाचार सुना–२६. वहाँ भी ब्राह्मणों को अनेक दान देकर शत्रुनाशक बलराम ने सुना कि, युद्ध में पांडवों द्वारा शल्य मारा गया–२७. वहाँसे समन्तपंचक के रास्ते से बाहर निकल कर बलराम ने ऋषिगणों से कुरुक्षेत्र (में निवास) का पुण्यफल पूछा–२८." स्पष्ट है कि, यह बात शल्यवध के दिन अपराण्ह या सायान्ह की होनी चाहिये। यहाँ समन्तपञ्चक तथा कुरुक्षेत्र का विशेष उल्लेख बताता है कि, इस समय बलराम युद्धक्षेत्र के समीप ही आ पहुँचे थे। उस स्थान से वे तुरन्त विष्णु आश्रम, प्लक्षप्रस्रवण एवं कारपवन तीर्थों की ओर बढ़े। उन्होने कारपवन में एक रात्रि बिताई—

सम्प्राप्तः कारपवनं प्रवरं तीर्थमुत्तमम्
हलायुधस्तत्र चापि दत्त्वा दानं महाबलः ॥ शल्यपर्व ५४ । १२ ॥
आप्लुतः सलिले पुण्ये सुशीते विमले शुचौ ।
संतर्पयामास पितॄन् देवांश्च रणदुर्मदः ॥ १३ ॥
तत्रोष्यैकां तु रजनीं यतिभिर्ब्राह्मणैः सह ।
मित्रावरुणयोः पुण्यं जगामाश्रममच्युतः ॥ १४ ॥

"कारपवन के श्रेष्ठ तीर्थस्थान को पहुँचकर महाबली बलराम ने वहाँ भी दान दिया–१२. वहाँ के पुण्यशील, सुशीतल, विमल एवं विशुद्ध जल में स्नान कर रणशूर बलराम ने पितरों का तथा देवताओं का तर्पण किया–१३. वहाँ एक रात्रि व्यतीत कर बलराम ब्राह्मण तथा मुनियों के साथ मित्रावरुण

के पावन आश्रम को गये–१४." यह रात्रि का उल्लेख अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसी रात्रि के पश्चात् बलराम कारपवन से मित्रावरुण तीर्थ गये, जहाँ यमुना में स्नान कर वे ऋषियों से धार्मिक कथा सुन रहे थे, तब नारदमुनि ने आकर भीम-दुर्योधन गदायुद्ध देखने चलने के लिये उन्हें प्रेरित किया, जो उस वख्त शुरू होनेमें ही था। इसपर बलराम तुरन्त अपनी तीर्थयात्रा समाप्त कर गदायुद्ध स्थान पर पहुँचे; और तत्पश्चात् उस प्रातःकाल के समय में उनकी उपस्थिति में गदायुद्ध प्रारंभ हुवा। इस प्रकार शल्यवध और गदायुद्ध के बीच एक रात्रि गई थी। अर्थात् शल्यवध के दूसरे रोज गदायुद्ध हुवा, न कि उसी रोज।

फिरभी वे दोनों घटना एकही रोज होने की भ्रामक धारणा से ग्रस्त होकर, तथा शल्यवध की वार्ता सुनने के पश्चात् बलराम ने अपनी तीर्थयात्रा में कारपवन में एक रात्रि बिताने के उल्लेख की उस धारणा से संपूर्ण विसंगति देख, महाभारत की कुछ पोथीयों से उस उल्लेख की उपरोक्त पंक्ति (श्लोक १४ पूर्वार्ध) को निकाल दिया जाने लगा। और अंततोगत्वा पुणें की भांडारकर अनुसंधान संस्था द्वारा प्रकाशित महाभारत की आवृत्ति में भी उस पंक्ति को शंकास्पद माना गया है। परंतु उपरोक्त हमारा पूरा विवेचन सिद्ध करता है कि कालगणना की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण वह पंक्ति मूल महाभारत की ही होनी चाहिये। यदि न होती, तो कोई कारण नही था कि बादमें कोई व्यक्ति वह पंक्ति उसमें डालकर बलराम ने कारपवन तीर्थ में एक रात्रि बिताने का उल्लेख व्यर्थ अपने मनसे ही कर देता। यहाँ बताना इष्ट होगा कि, तीर्थयात्रा के उस वर्णन में चमसोद्भेद, सप्तसारस्वत, तथा तैजस आदि अन्य भी कुछ स्थानों पर बलराम ने एक एक रात्रि बिताने के उल्लेख हैं।

शल्यवध के दूसरे रोज गदायुद्ध हुवा यह रहस्य भाष्यकारों के ध्यान में आता तो, अवकाश-दिनों की बात अलग रखने पर भी, पूरा युद्धकाल वे अठारह दिनों के बजाय कमसे कम उन्नीस दिन गिनते !

गीताजयंती की वास्तविक तिथि

अब इस सारी गणना से अनेक कूट हल हो जाते हैं। यह ठीक है कि महाभारत में कई स्थानों पर युद्ध दिन अठारह बताये हैं। किन्तु उसमें रहस्य यह है कि वह प्रत्यक्ष लड़ाई का काल है। युद्ध काल की पूरी तिथियों की गणना करने के लिये इनके दरम्यान एक एक अवकाश दिन जोडना आवश्यक है। अठारह दिनों के बीच ऐसे अवकाश दिन सत्रह होंगे। किन्तु ऊपर स्पष्ट किये अनुसार उनमें एक अपवाद भी था। अतः सोलह अवकाश दिन मिलकर कुल दिन चौतीस होंगे। मगर प्रत्यक्ष लड़ाई के अंतिम अठारहवे रोज का विभाजन दो दिनों में करनेकी खूबी से पूरा युद्धकाल फिर अंतिम रूप से पैंतीस दिनों का होता है।

इस गणना से अब बलराम यात्रा का भी पूरा स्पष्टीकरण देखिये। उस यात्रा का प्रारंभ युद्धारंभ के सात रोज पूर्व हुवा था। उन सात दिनों में हम यदि युद्धकाल के अब पैंतीस दिन जोडते हैं तो यात्रा की समाप्ति गदायुद्ध के समय बराबर बयालीसवे दिनपर होती है; जैसा कि स्वयं उनका शल्यपर्व में वचन है। नक्षत्रों का हिसाब भी बिलकुल ठीक बैठता है। पुष्यसे श्रवण पंद्रहवे स्थान पर है। अतः सत्ताईस नक्षत्रों का एक चक्कर प्रथम पूर्ण कर दूसरे चक्कर में श्रवण पुष्य से ठीक बयालीसवे स्थान पर आता है।

इस प्रकार युद्धारंभ की, अर्थात् गीताजयंती की, तिथि स्वयं श्रीकृष्ण के वचनानुसार उक्त अमावास्या ही है। उस अमावास्या से (अवकाश दिन मिलाकर) उन्नीसवे दिन भीष्मपतन हुवा, जिस रोज आगामी कृष्ण पक्ष की तृतीया थी। उसके बाद उसी पक्ष में प्रत्यक्ष लड़ाई के चौदहवे दिन, जिसकी तिथि कृष्ण द्वादशी थी, शामको जयद्रथ वध हुवा। इसी रोज उत्तररात्रि में, आगामीसूर्योदय के करीब तीन मुहूर्त पूर्व, चन्द्रोदय बराबर सिद्ध होकर वह कूट भी हल हो जाता है। उस चन्द्रोदय का निम्न मार्मिक वर्णन निःसंशय महाभारत के मूल रचयिता का ही होकर, बाद में किसीने अनधिकृत रूपसे उसमें डाला हुवा मानने का कुछ भी कारण नहीं।

ततः कुमुदनाथेन कामिनीगण्डपाण्डुना
नेत्रानन्देन चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलङ्कृता ॥ द्रोणपर्व १८४।४६ ॥
दशशताक्षककुब्दरिनिःसृतः
किरणकेसरिभासुरपिंजरः ।
तिमिरवारणयूथविदारणः
समुदियादुदयाचलकेसरी ॥ ४७ ॥
हरवृषोत्तमगात्रसमद्युतिः
स्मरशरासनपूर्णसमप्रभः ।
नववधूस्मितचारुमनोहरः
प्रविसृतः कुमुदाकरबान्धवः ॥ ४८ ॥
ततो मुहूर्ताद् भगवान् पुरस्ताच्छशलक्षणः
अरुणं दर्शयामास ग्रसन् ज्योतिःप्रभाः प्रभुः ॥ ४९ ॥
अरुणस्य तु तस्यानु जातरूपसमप्रभम्
रश्मिजालं महच्चन्द्रो मन्दं मन्दमवासृजत् ॥ ५० ॥
उत्सारयन्तः प्रभया तमस्ते चन्द्ररश्मयः
पर्यगच्छञ्शनैः सर्वा दिशः खं च क्षितिं तथा ॥ ५१ ॥
ततो मुहूर्ताद् भुवनं ज्योतिर्भूतमिवाभवत्
अप्रख्यमप्रकाशं च जगामाशु तमस्तथा ॥ ५२ ॥
यथा चन्द्रोदयोद्भूतः क्षुभितः सागरोऽभवत्
तथा चन्द्रोदयोद्भूतः स बभूव बलार्णवः ॥ ५५ ॥
ततः प्रववृते युद्धं पुनरेव विशाम्पते
लोके लोकविनाशाय परं लोकमभीप्सताम् ॥ ५६ ॥

"उसके बाद नेत्रों को सुखदायक, श्वेतकमल के नाथ, कामिनीयों के कपोलसदृश पांडुवर्ण चन्द्रमा ने (इन्द्र की) पूर्व दिशा सुशोभित की–४६. किसी गुहा के भीतर से प्रगट होनेवाले सिंह के समान, पूर्व दिशा (जिसका स्वामी सहस्राक्ष इन्द्र है) से बाहर आकर चन्द्रबिंब उदयाचल पर दृश्यमान हुवा; सिंह की अयाल के लंबे बालों के सदृश अपने पिंगल वर्ण किरण प्रसारित करते हुए चन्द्रमा ने अंधकार को, जो सिंह द्वारा विदीर्ण किये जानेवाले (काले) हाथीयों के समूह के समान था, नष्ट कर दिया–४७. श्वेतकमल के कुल (या सरोवर) के बांधव, श्री शंकर के वृषभोत्तम नंदी के (श्वेत) शरीर समान कांतिमय, कामदेव के (सफेद) पुष्पधनुष्य

सदृश प्रभा से पूर्णतः संपन्न, नववधु के मधुर स्मित के समान मनोहर, चन्द्रबिंब धीरे धीरे सब दिशाओं में प्रकाश प्रसारित करने लगा–४८. करीब एक मुहूर्त पश्चात् शशलक्षण भगवान् चन्द्र अपना अरुण प्रकाश प्रदर्शित करने लगे, जिससे नक्षत्रप्रभा फीकी पड गई–४९. अरुण कान्ति के पश्चात् चन्द्रमा ने धीरे धीरे स्वर्ण प्रभा समान अपने किरणों का विशाल जाल बिछा दिया–५०. चन्द्रकिरणें अपने प्रकाश से अंधकार को हटाती हुई धीरे धीरे सब दिशाओं, भूतल तथा आकाश को भी व्यापने लगी–५१. फिर कुछही क्षणों में समस्त भूभाग ज्योतिर्मयसा हो गया तथा अंधकार शीघ्र पूर्णतया नष्ट हो गया–५२. जैसे (पूर्णिमा के) चन्द्रोदयसे सागर में ज्वार का प्रादुर्भाव होता है, उसी प्रकार (उस समय) चन्द्रोदय होने पर वह सेनासागर हिलने लगा (अर्थात् योद्धा जगकर लड़ाई के लिये खडे होने लगे)–५५. राजा धृतराष्ट्र, तदनंतर अपने जीवन के भी त्यागको तैयार उन योद्धाओं का वह भयानक युद्ध फिर प्रारंभ हो गया, जिसका परिणाम महान लोकसंहार था –५६ "।

यह स्पष्टतया पूर्व दिशा में हुए प्रत्यक्ष चन्द्रोदय का ही वर्णन है, जो महाभारत युद्ध की गूढ कालगणना से पूर्णतः सुसंगत भी है। वह केवल मेघावरण से मुक्त होनेवाले चन्द्रबिंब का वर्णन नही है, जैसा कि कुछ भाष्यकार उस चन्द्रोदय वर्णन की आपत्ति से किसी प्रकार छुटकारा पानेवास्ते कहते हैं।

युद्धकाल में अवकाश दिनों की यह गूढ कल्पना महर्षि व्यास ने अपने मन में ही रखकर उसी आधार पर महाभारत काव्य में दिनों की सब गणना की; किन्तु अत्यंत संदिग्ध शब्दरचना के जाल में उस रहस्य को छिपा रखा। उसी से महाभारत के युद्धवर्णन में स्थान स्थान पर अगम्य कूट एवं विसंगति के आभास निर्माण होकर, उनको सुलझाने के अनेकानेक प्रयास किये जाते रहे।

युद्धारंभ दिन का नक्षत्र

युद्धारंभ के, अर्थात् गीतोपदेश के, दिन चन्द्रमा किस नक्षत्र में था ? इसकी भी विद्वानों द्वारा काफी चर्चा होते आ रही है। स्वयं महाकवि ने इसका एक महत्त्वपूर्ण संकेत रख छोडा है। श्रीकृष्ण की युद्धारंभ तिथि की घोषणा में उस अमावास्या को ' शक्रदेवताम् ' कहा है। अर्थात् उस अमावास्या के नक्षत्र की देवता इन्द्र थी। प्राचीन भारतीय साहित्य में प्रत्येक नक्षत्र की देवता दी गई है।

डॉ. काणे, डॉ. दप्तरी, श्री. गोखले अमावास्या से ही युद्धारंभ मानकर उसका नक्षत्र ज्येष्ठा बताते हैं। तामिल के प्रो. के. श्रीनिवास राघवन्[१८] भी, यद्यपि वे उस अमावास्या पर प्रत्यक्ष युद्धारंभ के बजाय केवल युद्ध की तैयारी का प्रारंभ मानते हैं, उस अमावास्या का नक्षत्र ज्येष्ठा ही बताते हैं। ये सब लेखक उसके आधार में उद्योगपर्व का उल्लेख करते हैं। किन्तु न उद्योगपर्व में, न पूरे महाभारत में अन्यत्र भी, ज्येष्ठा का इस संबंध में कोई उल्लेख है। बात इतनी ही है कि उद्योगपर्व का जो ऊपर उद्धृत किया श्लोक है उसमें श्रीकृष्ण उस अमावास्या को ' शक्रदेवताम् ' बताते हैं। और, ज्येष्ठा एक ऐसा नक्षत्र है जिस की देवता इन्द्र है। अतः इन विद्वानों का अनुमान है कि उस अमावास्या को ज्येष्ठा नक्षत्र ही होगा। किन्तु यह तो निर्विवाद है कि हस्तिनापुर में जिस दिन

पू. १८ वोंल्लेखित।

श्रीकृष्ण ने यह घोषणा की थी उस दिन से उक्त अमावास्या सात दिन बाद थी। घोषणा के रोज पुष्य नक्षत्र था यह भी महाभारत में स्पष्ट कहा गया है। पुष्य से ज्येष्ठा दस स्थान आगे है। तो क्या केवल सात रोज में चन्द्रमा नक्षत्रमंडल में दस स्थान लांघ लेगा ? यह तभी संभव होगा कि जब हम सात रोज में ही तीन नक्षत्र लोप की असंभव कल्पना मान लेंगे। किन्तु महाभारत की विशाल कथा महर्षि व्यास की भले ही केवल कविकल्पना हो या न हो, इतना निश्चित है कि उसमें उन्होंने (हो सकता है, एक काल्पनिक कथा को इतिहास का रूप देनेवास्ते) दिये सूक्ष्म ज्योतिषविषयक एवं कालगणनात्मक उल्लेख पूर्णतया असंभव एवं अशास्त्रीय नहीं हैं, जैसा कि ये लेखक सोचते प्रतीत होता है। फिरभी स्थूल दृष्टि से देखनेपर महाभारत में प्रतीत होनेवाली विसंगतिओं का रहस्य ध्यान में न आने के कारण कई विद्वान महाभारत को ही दोष देते रहते हैं।[१९]

अब कुछ अन्य विद्वानों के मत प्रस्तुत हैं। महाभारत पर आचार्य नीलकंठ का भाष्य विशेष महत्त्व का माना जाता है। श्रीकृष्णवचन की कोई परवा न करते वे युद्धारंभ तिथि मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशी या चतुर्दशी तथा नक्षत्र मृगशीर्ष मानते हैं।[२०] कारण इतनाही कि, नीलकंठ गदायुद्धदिन

१९. देखिये, " The above detailed statement about the astronomical passages of the Mahabharata will induce any unbiassed reader who has no axe to grind that they are hopelessly inconsistent and that no certain chronological conclusion can be drawn therefrom......To me it appears probable that the final redactor of the Mahabharata had two or more sets of astronomical data about the war before him and without trying to examine and sift them he included them all in his work...As I hold that either the Mahabharata passages on the positions of the planets were interpolated at a very late stage or are hopelessly inconsistent, I deem it unnecessary to enter upon an examination of the mathematical calculations made by several scholars to find out the date of the Bharata war from the shifting of the solstices and the position of the planets. " —Dr. P.V. Kane, " History of Dharmashastra " vol.III, p. 923. See also, " Some of the Maha Bharata references to astronomy afford an even better illustration of reckless astrological statements made without due regard to astronomical possibilities " —Swamikannu Pillai (quoted in Prof. Raghavan's " The Date of the Maha Bharata War ", p. 36).

२०. बल्कि और भी आश्चर्य की बात यह है कि भीष्म पर्व पर अपने भाष्य में एक स्थान पर नीलकंठ युद्धारंभ घोषणा के श्रीकृष्णवचन को दुर्योधन के ही शब्द बताकर उसमें ' संग्राम ' का अर्थ ' संग्राम की तैयारी ' कर देते हैं। " यत्तु ' सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति संग्रामं योजयेत्तत्र तां ह्याहुः शक्रदेवताम्। प्रयाध्वं वै कुरुक्षेत्रं पुष्योद्येति पुनः पुनः ' इति दुर्योधनवाक्यम्। तत्र संग्राममित्यनेन संग्रामे जयसाधनं धाराबंधादिकं तस्यां योजयेदित्युक्तम् "। अब ' प्रयाध्वं वै कुरुक्षेत्रं पुष्योद्य ' ये शब्द मूलतः दुर्योधन के होकर वे श्रीकृष्ण ने पांडवों को कथन किये यह ठीक है। किन्तु ' सप्तमाच्चापि ......शक्रदेवताम् ' यह वचन निश्चित रूप से स्वयं श्रीकृष्ण के कर्ण से संभाषण का ही एक अंश होकर, वह श्रीकृष्ण ने ही कौरव पक्ष को भेजा हुवा संदेश है। उद्योगपर्व में, जहां वह वचन मूल में आता है, स्वयं नीलकंठ ने भी उसको दुर्योधन का नहीं माना है।

को युद्ध का लगातार अंतिम अठारहवा दिन गिनते हैं; और चूंकि उस दिन बलराम वचन के अनुसार श्रवण नक्षत्र था, अतः श्रवण से अठारह स्थान पीछे गिनकर जो मृग नक्षत्र आता है वही नीलकंठ ने युद्धारंभ का नक्षत्र मान लिया। इसी मत का अनुसरण महाराष्ट्र के भारताचार्य चिंतामणराव वैद्य आदि करते हैं। किन्तु जैसा कि अब स्पष्ट हो रहा है, युद्धारंभ तिथि इनके मतानुसार न होकर उसके पूर्वकी अमावास्या थी। और इसके अलावा भी अत्यंत महत्त्वकी बात तो यह है कि, पूरा युद्धकाल अठारह दिन न होकर पैंतीस दिन का था। अतः गदायुद्ध दिन के श्रवण नक्षत्र से हमें पैंतीस स्थान पीछे गिननेपर ही युद्धारंभ नक्षत्र उपलब्ध हो सकेगा।

इन मतों के अलावा, अन्य कुछ भाष्यकार युद्धारंभ नक्षत्र को भरणी[२१], रोहिणी[२२], पुनर्वसु-पुष्य[२३] भी बताते हैं; किन्तु इनमें से न तो किसीकी भी देवता इन्द्र है, न ही इनसे बलरामयात्रा के महाभारत में स्पष्ट दिये हुए नक्षत्र सिद्ध होते हैं!

फिर वास्तव में महाकवि द्वारा संकल्पित युद्धारंभ नक्षत्र कौनसा था? वह चित्रा था। इसमें कूट यह है कि ज्येष्ठा तथा चित्रा दोनों की ही देवता इन्द्र बताई गई है[२४]। पुष्य से चित्रा छः स्थान दूर है। अतः घोषणादिन और युद्धारंभ के बीच के सात दिनों में एक नक्षत्र वृद्धि मानकर (जो पूर्णतया संभव है) अमावास्या को चित्रा नक्षत्र आता है। इसी आधार से आगे दी हुई तिथितालिका में बलरामयात्रा समाप्ति पर ठीक श्रवण नक्षत्र भी आता है। इसके अलावा युद्धारंभ के समय बुध, गुरु आदि अन्य ग्रहों की स्थिति का जो वर्णन महाकवि ने दिया है उसकी भी संगति चन्द्रमा को चित्रा में मानने से ठीक बैठती है;[२५] यद्यपि मुझे खेद है कि उसका पूरा स्पष्टीकरण मैं इस लेख में नहीं दे सकता।

---

२१. ज्योतिर्विद पंडित देवकीनंदन खेडवाल लिखित 'महाभारत युद्धकाल निर्णय' पृष्ठ ८, तथा 'भारतीय कालगणना' पृष्ठ १२६। इस नक्षत्र का सर्वप्रथम उल्लेख 'भारत-सावित्री' में (देखिये ऊपर टीप ११) आता है; किन्तु प्रत्यक्ष महाभारत में दिये सूक्ष्म संकेतों से वह स्पष्टतया विरोधी है।

२२. देखिये श्री. अभ्यंकर का लेख (उपरोल्लेखित)। इनके अनुसार युद्ध मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशी को प्रारंभ होकर लगातार प्रतिदिन चला। श्री. अभ्यंकर द्वारा निश्चित की गई तिथियाँ इस प्रकार हैं — युद्धारंभ, शुक्ल त्रयोदशी (रोहिणी नक्षत्र); भीष्मपतन, कृष्ण ६ (हस्त नक्षत्र); अभिमन्यु वध, कृष्ण ९ (विशाखा); जयद्रथ वध तथा रात्रि युद्ध, कृष्ण १० (अनुराधा); द्रोण वध, कृष्ण ११ (ज्येष्ठा); कर्ण वध, कृष्ण १३ (पूर्वाषाढा); शल्यवध, कृष्ण १४ (उत्तराषाढा), तथा उसी रोज शाम को भीम-दुर्योधन गदायुद्ध।

२३. देखिये "भारतीय युद्धकाल निर्णय" (मराठी), लेखक प्रो. र. वि. वैद्य, (१९६४)। इनके अनुसार महाभारत युद्धकाल केवल सोलह दिनोंका था। इनका यह भी कहना है कि भीष्मनिधन समय शुक्ल पक्ष में कदापि नहीं हो सकता।

२४. तैत्तिरीय संहिता, ४ – ४ – १०; तैत्तिरीय ब्राह्मण, १ – ५ – १.

२५. केवल शुक्र ग्रह की स्थिति अभी तक पूर्णतया स्पष्ट नहीं हुई है।

भीष्मनिधन की वास्तविक तिथि

अंत में भीष्मनिधन तिथि के महान कूट का भी सीधा हल प्रस्तुत है। अमावास्याको ही युद्धारंभ मानकर आगामी कृष्ण तृतीया को (जो प्रत्यक्ष लड़ाईका दसवा दिन था) शाम के समय भीष्म का पतन हुवा। तभी से उनकी भयानक शरशय्या प्रारंभ हुई। आइये, उस कृष्ण तृतीया से हम ठीक अट्ठावन रात्रि गिनकर देखें —

१३ रात्रि, उस कृष्ण पक्ष की शेष
१५ रात्रि, अगले शुक्ल पक्ष की (पौष मास)
१५ रात्रि, अगले कृष्ण पक्ष की
१५ रात्रि, अगले शुक्ल पक्ष की (माघ मास)
———
५८

(वस्तुतः प्रथम कृष्ण पक्ष में एक तिथिलोप होने से उसकी शेष रात्रि घटकर बारह ही थी; जब कि उसकी पूर्ति में बाद के शुक्ल पक्ष में एक तिथिवृद्धि होकर वहां रात्रि संख्या बढ़कर सोलह थी– देखिये आगे तिथितालिका में दिया स्पष्टीकरण। किन्तु स्पष्ट है कि उससे रात्रियों की कुल अट्ठावन संख्या में कोई फरक नही आता)। अब इससे हम सीधे माघ शुक्ल पूर्णिमा की रात्रि के समाप्ति समयपर पहुंचते हैं। यही अगली कृष्ण प्रतिपदा के पूर्व के उषःकाल का पवित्र समय था, जब महात्मा भीष्माचार्य की प्राणज्योति अनंत ईश्वर तत्त्व में सदा के लिए विलीन हो गई। उस समय महीना माघ था तथा पक्ष ठीक शुक्ल जैसा कि महाभारत में कहा है। अब रहा सवाल महाकवि द्वारा प्रयुक्त 'त्रिभागशेष' शब्द का। उसका वास्तविक आशय इतनाही है कि उस समय उस शुक्ल पक्ष के (अर्थात् उस की अंतिम तिथि पूर्णिमा के रात्रि के) केवल तीन 'मुहूर्त' शेष थे। यहां 'भाग' का अर्थ केवल मुहूर्त है, जो एक दिन में तीस होते हैं, (अर्थात् एक मुहूर्त अडतालीस मिनिटोंका होता है)। यहां 'त्रिभाग' का अर्थ उस शुक्ल पक्ष का गणितीय अनुपात से तीन चौथाई अंश (याने करीब ग्यारह दिन का काल) या उस माघ मास का भी तीन चौथाई हिस्सा (याने करीब तीन सप्ताहों का काल) ऐसा कुछ भी नही है। कूट सम्राट महाकवि के इस एक 'त्रिभागशेष' शब्दमात्र से ही ('अपराण्हे' के समान) सदियोंतक अभ्यासकों के मन में जो भ्रम निर्माण कर दिया वह देखकर मन दंग रह जाता है![२६]

---

२६. मजे की बात यह है कि 'भाग' शब्द का मुहूर्त के अर्थ में उपयोग महाकवि ने महाभारत में अन्यत्र भी किया है; देखिये, द्रोणपर्व १८६।१,१९१। ९। अब यह सहजही स्पष्ट होगा कि महाभारत के कुछ प्रतियों में आनेवाला निम्न श्लोक अनधिकृत (इन्टरपोलेशन्) होना चाहिये। "शुक्लपक्षस्य चाष्टम्यां माघमासस्य पार्थिव। प्राजापत्ये च नक्षत्रे मध्यं प्राप्ते दिवाकरे" (शांतिपर्व अध्याय ८७)। इसमें भीष्मनिधन तिथि माघ शुक्ल अष्टमी बताई है। यह संभवतः 'त्रिभागशेषः' के विषय में भ्रमित किसी व्यक्ति ने लिखा होना चाहिये। फिर इस श्लोक के अनुसार 'त्रिभागशेषः' का संबंध माघ मास से ही (उसको भी अमावास्यान्त बताकर) मानना चाहिये; न कि शुक्ल पक्ष से, जो किसीभी अर्थ में उस तिथि पर 'त्रिभागशेषः' नही बताया जा सकता। महाभारत में दिये सब संबंधित सूक्ष्म संकेत तथा कालगणनात्मक उल्लेख इस श्लोक के विरुद्ध जाते हैं। पाठक देख लें कि यह एक श्लोक हटाने पर भी पूर्व के तथा बाद के विषय-विवरण को कोई बाधा नही पहुँचती।

यहीं पर एक और सूक्ष्मता है; मुझे विश्वास है उसे देखकर पाठकों को विशेष आनंद होगा। आपत्ति उठाई जा सकती है कि, अट्ठावनवी रात्रि पूर्णिमा की ही रात्रि होने से वह समाप्त होते ही शुक्ल पक्ष भी समाप्त हो जाता है; और इसलिये यदि भीष्मनिधन शुक्ल पक्ष में ही हुवा था तो अट्ठावनवी रात्रि उस समय पूर्ण समाप्त नही हुई थी, या फिर वह निधन कृष्ण पक्ष में हुवा सम-झना चाहिये। इस बात के स्पष्टीकरण से महाकवि के गणित तथा ज्योतिष विषयक उद्गारों की आश्चर्यजनक सूक्ष्मता पर और भी प्रकाश पडेगा। वर्तमान संदर्भ में महाभारत में ‘ रात्रि ’ शब्द का उपयोग किया है। अब संस्कृत में सूर्यविहीन काल के लिये ‘ रात्रि ’ ‘ रजनी ’ ‘ निशा ’ ‘ शर्वरी ’ आदि कई शब्द हैं। इनमें शुद्ध शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार ‘ निशा ’ में सूर्यास्त से सूर्योदय तक का पूरा समय आता है; किन्तु ‘ रात्रि ’ में दोनों ओर के संध्याकाल समाविष्ट नही होते। इस प्रकार महाकवि का कथन बिलकुल ठीक ही है कि, भीष्मनिधन के समय अट्ठावन रात्रियाँ हो चुकी थी, किन्तु फिर भी शुक्ल पक्ष ही था; क्यों कि वह घटना कृष्ण पक्ष के प्रथम सूर्योदय के पूर्वके उषःकाल में हुई थी। यहां उल्लेखनीय है कि, महाभारत में अन्यत्र भी ‘ रात्रि ’ का इसी सूक्ष्म अर्थ में उपयोग किया होकर, जहां सूर्यास्त से तत्काल बाद आनेवाले क्षणों का संबंध था वहां ‘ निशा ’ शब्द का प्रयोग किया गया है। गीता में भी मृत्यु के लिये श्रेष्ठ तथा कनिष्ठ समयों का वर्णन करते हूए (अध्याय ८ श्लोक २४, २५) ‘ रात्रि ’ शब्द का ही उपयोग किया गया है यह पाठकों को विदितही है। और अब ‘ रात्रि ’ का यह सूक्ष्म आशय ध्यान में लेने से महाकवी ने भीष्माचार्य के मृत्युसमयीन उद्गारों में उस शुक्ल पक्ष के संबंध में ‘भवति’ या ‘अस्ति’ ऐसा सीधा न कहकर ‘भवि-तुम् अर्हति’ ऐसा क्यों लिखा यह भी स्पष्ट होगा। पूर्णिमा की ‘ रात्रि ’ समाप्त होनेपर भी, कृष्ण पक्ष का प्रत्यक्ष प्रारंभ न होनेसे, उस समय शुक्ल पक्ष ही ‘माननाउ चित होगा’ इस आशय का वह मार्मिक वचन है। इन्ही ‘भवितुम् अर्हति’ शब्दों का गलत ढंग से आधार लेकर कई विद्वान भीष्मनिधन तिथि प्रत्यक्षतः कृष्ण पक्ष में रखकर उसी को शुक्ल पक्ष माननेकी बात करते रहे।

क्या अवकाश दिनों की कल्पना प्रक्षिप्त है ?

महाभारत युद्ध की वास्तविक कालगणना निश्चित करने में अवकाश दिनों का विशेष महत्त्व अब पाठकों को स्पष्ट हुवा होगा। इस संबंध में यहां एक लेख[२७] का उल्लेख उचित होगा, जिस की ओर मेरे इस विषय पर नागपूर में व्याख्यानों के समय मेरा ध्यान आकर्षित किया गया था। उसके लेखक श्री. रा. ल. गोखले लिखते हैं कि प्राचीन भारत में युद्धकालीन अवकाश दिनों की प्रथा थी (जिसका आधार उन्होंने नहीं दिया है); और कौरव पांडव युद्ध एक वास्तविक ऐतिहासिक घटना के रूप में उसके पन्द्रहवे दिन तक (जिस दिन द्रोणवध हुवा); उसी पद्धति से हुवा होगा। किन्तु उक्त लेखक आगे लिखते हैं कि, महाभारत काव्य के अनेक मूल रचयिताओं में से कईयों को वह प्रथा ज्ञात न होनेसे, उस महाकाव्य में दिया हुवा युद्ध का वर्णन तथा कालानुक्रम प्रायः लगातार प्रतिदिन लड़ाई की धारणा पर आधारित है। श्री. गोखले के अनुसार युद्धारंभ अमावास्या को हुवा; वहांसे लगातार चौदहवा दिन शुक्ल त्रयोदशी को आता है, जिस रोज चन्द्रोदय रात्रिप्रारंभ में ही होता है। इसलिये, उक्त लेखक के मत में, महाभारत की मूल रचना

२७. “ महाराष्ट्र-साहित्य-पत्रिका ” (मराठी), वर्ष ९, अंक १.

में उस दिनका वह (बहुचर्चित) चन्द्रोदय रात्रिप्रारंभ काल में ही बताया होगा; किन्तु बाद में किसी ने, जो उपरोक्त प्रथा जानता था, जैसा तैसा उस चन्द्रोदय को उत्तररात्रि में बता दिया, जिससे बीच के अवकाश दिन गिनकर उस रोज की तिथि कृष्ण पक्ष के उत्तरार्ध में मानी जा सके। किन्तु यह एक तथाकथित बादमें डाला हुवा (इन्टरपोलेटेड्) अंश छोडकर, महाभारत काव्य कुलमिलाकर (श्री. गोखले के अनुसार) लगातार प्रतिदिन लड़ाई की कल्पना पर ही आधारित है। अतः वे दसवे रोज पर भीष्मपतन की तिथि उसी हिसाब से निश्चित करते हैं; और इसी लिये भीष्मनिधन तिथि भी वही परंपरागत माघ शुक्ल अष्टमी मानते हैं। वैसेही, पांडवों द्वारा की गई सामुदायिक दाहक्रिया आदि युद्धोत्तर अन्य घटनाएँ भी वे उसी दृष्टि से देखते हैं। उनका युद्धारंभ नक्षत्र भी ज्येष्ठा ही है; तथा युद्ध के अंतिम तीन दिनों के बीच (उक्त तथाकथित प्रथा के बावजूद) वे कोई अवकाश दिन नही देखते। सारांश, केवल चौदहवे रोजका उक्त उत्तररात्रि का चन्द्रोदय स्पष्ट करने हेतु वे अवकाश दिनों की प्रथा का उल्लेख करना चाहते हैं; और उसे भी एक बाद में प्रविष्ट किया गया प्रक्षिप्त अंश मानते हैं।

अब, जहांतक अवकाश दिनों की उस तथाकथित प्राचीन प्रथा का सवाल है, कमसे कम मैं फिलहाल उस बारे में निश्चित कुछ नही जानता। अतः उसके विषय में पूर्वग्रह रहित मन रखकर मैं यहां निम्नलिखित दो शब्द कहना चाहूंगा। यदि प्राचीन भारत में वास्तव में ऐसी कोई आम प्रथा होती, तो क्या तत्कालीन उपलब्ध सब ज्ञानविज्ञान के भंडाररूप जिस अलौकिक महाभारत ग्रंथ की सदियों से यथार्थ प्रशंसा की जाती आ रही है, उसी के रचयिता को वह ज्ञात नही होती ? और क्या उस हालत में महाभारत काव्य की रचना में अवकाश दिनों की कल्पना का युद्धकालीन सभी कालगणनात्मक विवरणों में इतना गुप्त उपयोग किया गया होता, जैसा कि उसके श्लोकों के सूक्ष्म अध्ययन से अब स्पष्ट हो रहा है ? और किया भी गया होता, तो क्या वह बात भारतीय विद्वानों को ही इतने दीर्घकाल तक एक अगम्य कूटस्वरूप बनी रहती ? यह संभव है कि, महाकवि ने युद्धकाल में ऐसे विश्राम की कोई एकाध प्रत्यक्ष घटना शायद देखी या सुनी हो[२८]। किन्तु जिस योजनाबद्ध, कल्पनारम्य तथा गूढ प्रकार से ऐसे युद्धविराम का उपयोग महाभारत काव्य में किया गया है (और उस रहस्य का पता लगाने वास्ते महाकवि ने अपने पाठकों को जो आव्हान दे रखा है) वह देखते हुए तो यही मानना उचित होगा की, पूरे अठारह दिन चलनेवाली कौरव पांडव लड़ाई के बीच दोनों पक्षों की संमति से अवकाश दिन रखने की यह विलक्षण कल्पना मुख्यतः स्वयं महाकवि की प्रतिभा की ही अद्भुत उपज होनी चाहिये। चौदहवे दिन उत्तररात्रि में होनेवाला चन्द्रोदय ही केवल नहीं, अपितु उस युद्ध की अन्य सभी घटनाओं की भी तिथियाँ कूटरूप से अवकाश दिनों की कल्पना पर ही आधारित है। फिर एक और महत्त्वकी बात यह है कि, महाभारत के कालगणनात्मक कूटों के मूल में इस तथा अन्य भी संबंधित रहस्यों के सुसंगत गूढ उपयोग से अब स्पष्ट हो रहा है कि, यह पूरा प्रचंड महाकाव्य

२८. वर्तमान समय में भी व्हिएत् नाम युद्ध में किसी खास धार्मिक अवसर पर उभय संमति से कभी कभी लड़ाई स्थगित की गई है।

एकही अति प्रतिभासंपन्न महापुरुष की, फिर उसका वास्तविक नाम धाम आदि कुछ भी हो, रचना होनी चाहिये; न कि दो या तीन लेखकों की, जैसा आम तौरपर माना जाता है।

क्या कौरव-पांडव युद्ध वास्तव में एक ऐतिहासिक घटना थी, और यदि थी, तो क्या उसका कालानुक्रम महाभारत काव्य में मूल घटना के अनुसारही बताया है या महाकवि द्वारा सहेतुक या 'अज्ञानवश' परिवर्तित किया गया है, इसका निश्चित उत्तर तो तभी दिया जा सकेगा, जब इस विषयपर अन्य कोई पर्याप्त ठोस आधार उपलब्ध होगा। हाँ, इस दरम्यान क्या युद्ध के बीच विश्राम का और कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष उल्लेख भारतीय या किसी अन्य प्राचीन साहित्य में भी मिलता है, इसकी खोज अवश्य इष्ट होगी; जिससे महाभारत एवं उसके महान रचयिता के स्थल कालादि पर अधिक प्रकाश पड सकेगा।[२९]

कुछ सूक्ष्म संकेत

महाभारत के युद्ध वर्णन में छिपे अवकाश दिन ध्यान में लेनेसे महाकवि द्वारा निर्दिष्ट विभिन्न दिन संख्या तथा तिथियों का तालमेल इस प्रकार बराबर बैठता है। किन्तु इसके अलावा भी इनके अन्य सूक्ष्म प्रमाण महाभारत के श्लोकों में प्राप्त होते हैं। कई अवकाश दिनों पर कौन कौनसी विशिष्ट घटना घटी यह भी बताया जा सकता है। महाभारत के श्लोकों में इन अवकाश दिनों के जो अप्रत्यक्ष तथा प्रत्यक्ष प्रमाण हैं उनमें से कुछ यहाँ प्रस्तुत हैं। पाठक इस संबंध में महाभारत युद्धविषयक तीन भिन्न तिथिगणना ख्याल में रखें। पहिली, इस लेखक के अनुसार, जिसमें अमावास्या को युद्धारंभ मानकर लड़ाई अंतिम अठारहवे दिनतक अवकाश दिनों के साथ (एक अपवाद छोडकर) चली। दूसरी गणना में युद्धारंभ तो अमावास्या को ही हुवा, किन्तु लड़ाई प्रतिदिन चली; यह मत डॉ. काणे, डॉ. दप्तरी आदि का है। तीसरी गणना में युद्धारंभ तिथि मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी (कुछ के अनुसार त्रयोदशी) होकर लड़ाई प्रतिदिन चली; इसी के अनुसार भारतवर्ष में गीता जयंती मनाने की दीर्घकालीन प्रचलित परंपरा पडी है। इन तीन गणनाओं के आधार पर प्रत्यक्ष लड़ाई के विभिन्न दिवस निम्न तिथियों पर आते हैं।

---

२९. इस प्रकार यद्यपि अवकाश दिनों का किसी प्रकार उल्लेख करते हुए भी, श्री. गोखले के लेख में वह इतने आंशिक तथा विपर्यस्त स्वरूप में व्यक्त हुआ; और उससे भी विशेष यह कि उक्त कल्पना स्वयं मूल महाभारत रचना की विरोधी तथा उस में बाद में प्रविष्ट की गई बताई गई। अतः उसी पत्रिका में शीघ्र ही दूसरे लेखमें उस लेख का खंडन करना तथा महाभारत युद्ध लगातार प्रतिदिन होता था इसीका आग्रह धरना डॉ. दप्तरी के लिये बडा आसान हुवा। और बात वहींपर रह गई ऐसा दिखता है। क्योंकि बाद में किसी भी लेखक ने (तथा भांडारकर संशोधन संस्थाके संपादकों ने भी) महाभारत महाकाव्य के श्लोकों में दिया हुवा पूरा युद्ध का विस्तृत वर्णन उसके मूल रचना काल से ही अत्यंत कुशलता से तथा योजनापूर्वक एकेक दिन छोडकर लड़ाई होने की गुप्त कल्पना पर आधारित है इस तथ्य का कुछ भी ख्याल किया या उस पर कुछ भी ध्यान दिया दिखता नहीं।

लड़ाई का दिन	प्रथम गणना	द्वितीय गणना	तृतीय गणना
१ (गीता जयंती)	अमावास्या	अमावास्या	शुक्ल एकादशी
२	शुक्ल द्वितीया	शुक्ल प्रतिपदा	,, द्वादशी
३	,, चतुर्थी	,, द्वितीया	,, त्रयोदशी
४	,, षष्ठी	,, तृतीया	,, चतुर्दशी
५	,, अष्टमी	,, चतुर्थी	,, पूर्णिमा
६	,, दशमी	,, पंचमी	कृष्ण प्रतिपदा
७	,, द्वादशी	,, षष्ठी	,, द्वितीया
८	,, चतुर्दशी	,, सप्तमी	,, तृतीया
९	कृष्ण प्रतिपदा	,, अष्टमी	,, चतुर्थी
१० (भीष्मपतन)	,, तृतीया	,, नवमी	,, पंचमी
११	,, पंचमी	,, दशमी	,, षष्ठी
१२	,, सप्तमी	,, एकादशी	,, सप्तमी
१३	,, दशमी[३०]	,, द्वादशी	,, अष्टमी
१४ (जयद्रथवध)	,, द्वादशी	,, त्रयोदशी	,, नवमी
१५ (द्रोणवध)	,, त्रयोदशी	,, चतुर्दशी	,, दशमी
१६	,, अमावास्या	,, पूर्णिमा	,, एकादशी
१७	शुक्ल द्वितीया	कृष्ण प्रतिपदा	,, द्वादशी
१७½ (शल्यवध)	,, चतुर्थी	} ,, द्वितीया	} ,, त्रयोदशी
१८ (दुर्योधनवध)	,, पंचमी		

अब विशेष बात यह है कि महाभारत के रचयिता ने लड़ाई के प्रत्येक दिन का विस्तृत वर्णन दिया है, जिसमें कुछ विशिष्ट दिनों को सूर्यास्त होतेही सर्वत्र अंधकार छा जानेका कहा है। वह स्पष्ट ही कृष्णपक्ष का संकेत है। इसके अलावा यह भी लिखा है कि कुछ दिनों पर सूर्यास्त के साथ लड़ाई स्थगित हुई, किन्तु कुछ दिनों पर सूर्यास्त के बाद भी चालू रही। जिन दिनों सूर्यास्त के बाद लड़ाई जारी रही उनमें से एक रोज (प्रत्यक्ष लड़ाई के चौदहवे रोज) अंधकार का स्पष्ट उल्लेख होकर, उस अंधकार में मशालें जलाकर युद्ध हुवा ऐसा भी वर्णन दिया है। अतः जहां सूर्यास्त के बाद भी लड़ाई चालू बताई है, किन्तु अंधकार का उल्लेख नहीं है, वहां चन्द्रप्रकाश का संकेत मिलता है। इस सब संदर्भ में हम तीनों तिथि गणनाओं का परीक्षण करते हैं, तो केवल प्रथम गणना ही पूर्णतया खरी सिद्ध होती है। अन्य दोनों का इन सूक्ष्म संकेतों में से कुछसे ही समन्वय होकर शेष संकेतों से खंडन हो जाता है। इसका संक्षेप में स्पष्टीकरण नीचे दिया है।

युद्धारंभ के रोज सूर्यास्त होतेही लड़ाई बंद हो गई। उस समय का वर्णन करते हुए महाभारतकार कहते हैं—

---

३०. यहां एक तिथिक्षय है, जिसका स्पष्टीकरण आगे दिया है।

ततः सैन्येषु भग्नेषु मथितेषु च सर्वशः ।
प्राप्ते चास्तं दिनकरे न प्राज्ञायत किंचन ॥ (भीष्म पर्व ४९।५२)

यहां कहे अनुसार उस दिन सूर्यास्त होतेही किसीको कुछ भी नही दिखाई देता था; अर्थात् घोर अंधकार छा गया था । क्या यह मार्मिक संकेत अमावास्या को सिद्ध तथा शुक्ल एकादशी (या त्रयोदशी) का पूर्णतया खंडन नही करता ? इसके बाद लड़ाई के दूसरे, तीसरे, चौथे तथा पांचवे रोज भी सूर्यास्त बाद लड़ना बंद हो गया; किन्तु वहां महाभारतकार ने अंधकार का उल्लेख नही किया है । अर्थात् चन्द्रोदय तो होगा, किन्तु उसका प्रकाश इतना नही होगा कि उसमें लड़ाई चलायी गयी । प्रथम (तथा द्वितीय) तालिका की तिथियाँ इससे सुसंगत हैं, किन्तु तृतीय की विसंगत । छठे रोज भी सूर्यास्त के बाद अंधकार का उल्लेख नही है, किन्तु लड़ाई कुछ समय और चालू रहने का सर्वप्रथम उल्लेख मिलता हैं ।

अन्योन्यागस्कृतां राजन् यमराजविवर्धनम् ।
मुहूर्तास्तमिते सूर्ये चक्रुर्युद्धं सुदारुणम् ॥ (भीष्म पर्व ७९।६०)

" हे राजन् (धृतराष्ट्र), सूर्यास्त होने बाद एक मुहूर्त तक (योद्धाओं ने) एक दूसरे पर भीषण प्रहार करते हूए यमलोक की वृद्धि करनेवाला महाभयंकर युद्ध किया " । यह वर्णन भी प्रथम गणना की शुक्ल दशमी का समर्थन तथा तृतीय गणना की कृष्ण प्रतिपदा का खंडन करता है।

सातवा रोज लीजिए । उस दिन भी सूर्यास्त के बाद लड़ाई कुछ समय और चालू रही, जिसके वर्णन में अंधकार का उल्लेख नही है । यह बात भी पुनः प्रथम गणना की शुक्ल द्वादशी का समर्थन करती हुई तृतीय तालिका की कृष्ण द्वितीया को गलत बताती है।

नववे रोज प्रथम गणनानुसार कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा थी । किन्तु द्वितीय तालिका के अनुसार वह शुक्ल अष्टमी थी । इस रोज के वर्णन में सूर्यास्त के बाद संध्या 'घोरा' प्रतीत हो रही थी ऐसा दो बार कहा है–

युध्यतामेव तेषां तु भास्करेऽस्तमुपागते ।
संध्या समभवत् घोरा नापश्याम ततो रणम् ॥
तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे पांडवा वृष्णिभिः सह ।
सृञ्जयाश्च दुराधर्षा मंत्राय समुपाविशन् ॥ (भिष्मपर्व १०७।१, १०)

" इस प्रकार दोनों सेना युद्ध करते करते सूर्यास्त होकर संध्यासमय घोर (अत्यंत भयानक) प्रतीत होने लगा, और हमें रणभूमि साफ नही दिखने लगी—१. उस घोर रात्रिप्रारंभ काल में वृष्णियों सहित पांडव तथा शूर संजय गुप्त मंत्रणार्थ एकत्र बैठे—१० "।

स्पष्ट है कि कृष्ण पक्ष की उस प्रतिपदा को सूर्यास्त बाद का समय चन्द्रप्रकाश के अभाव में 'घोर' प्रतीत हो रहा था । महाभारत में शुक्ल पक्ष की संध्याकाल के वर्णन में 'घोर' शब्द नहीं मिलता है । उक्त वर्णन उस दिन शुक्ल अष्टमी होनेका खंडन करता है । इसी प्रकार लड़ाई के ग्यारहवे रोज सूर्यास्त पर संपूर्ण अंधकार छा गया था—

सूर्ये चास्तमनुप्राप्ते तमसा चाभिसंवृते ।
नाज्ञायत तदा शत्रुर्न सुहृन्न च कश्चन ॥ (द्रोणपर्व १६।४९)

" सूर्यास्त हो जाने पर तथा अंधकार सर्वत्र व्याप्त होने पर किसी को न कोई शत्रु न कोई मित्र भी पहचान में आने लगा " । प्रथम तिथिगणनानुसार यह कृष्ण पंचमी थी, जिसे यह वर्णन बराबर लागू होता है । यह द्वितीय गणना की शुक्ल दशमी नहीं हो सकती ।

अन्त में लड़ाई का चौदहवा दिन देखिये । इसकी रात्रि की चर्चा ऊपर काफी हो चुकी है । महाभारत में बारबार कहा हैं कि इस रोज सूर्यास्त होते ही अंधकार हो गया, यद्यपि उस में भी मशालें जलाकर भयानक रात्रियुद्ध चलता रहा । अर्जुन की जयद्रथ वध प्रतिज्ञा पूर्ण हो जानेसे पांडव पक्ष उस समय अत्यंत हर्ष विभोर था; तथा कौरव पक्ष उतनाही उद्विग्न किन्तु बदला लेनेकी ईर्षासे भरा था । इस रात्रि का वर्णन भी प्रथम तिथिगणना का समर्थन तथा द्वितीय का पूर्ण खंडन करता है । क्या वह तृतीय तालिका के कृष्ण नवमी का भी समर्थन करता है ? उस रात्रि के पूर्वार्धतक तो दोनों में संगति हो सकती है । किन्तु पाठकों को स्मरण होगा कि महर्षि व्यास ने इसी रात्रि के उत्तरार्ध में सूर्योदय के तीन मुहूर्त पूर्व चन्द्रोदय होना बताया है (द्रोणपर्व १८६/१)। कृष्ण नवमी का चन्द्रोदय इससे कुछ पहिले होता है; जब कि कृष्ण द्वादशी का करीब उसी समय । [३१]

व्यास की मार्मिकता

इस प्रकार लडाई के विभिन्न दिनों के सूर्यास्त समय के ये मार्मिक संकेत तिथिनिर्णय की दृष्टि से विशेष महत्त्व के होकर, जिन दिनों का मैने यहाँ उल्लेख नही किया है उनके भी वर्णन इस प्रबंध में निश्चित की गई उपरोक्त प्रथम तिथिगणना की ही पुष्टि करते दिखेंगे । यहाँ चिकित्सक पाठकों के ध्यान में आया ही होगा की अभी किये विवेचन में मैने लड़ाई के आठवे दिन का उल्लेख नही किया । और इस लिये, क्या उस दिन का महाभारत में किया वर्णन मेरी तिथि गणना से विसंगत तो नही, ऐसी शंका भी उनके मन में उठना संभव है । उसका समाधान यहाँ प्रस्तुत है । बात यह है कि उस दिन के वर्णन में महर्षि व्यास ने शाब्दिक सूक्ष्मता की पुनः कमाल की होकर, मैं उसका अलगसे स्पष्टीकरण करना चाहूँगा ।

उस दिन के युद्धस्थगन के उल्लेख में संजय धृतराष्ट्र से कहता है--

परस्परं समासाद्य तव तेषां च संयुगे ।
तेषु श्रान्तेषु भग्नेषु मृदितेषु च भारत ॥ भीष्मपर्व ॥ ९६/७८ ॥
रात्रिः समभवत् तत्र नापश्याम ततोऽनुगान् ।
ततोऽवहारं सैन्यानां प्रचक्रुः कुरुपाण्डवाः ॥ ७९ ॥

---

३१. संभवतः इसी कारण से तीसरी गणना म कुछ विद्वान युद्धारंभ शुक्ल एकादशी के स्थान पर त्रयोदशी मानते हैं, जिससे लड़ाई का लगातार चौदहवाँ दिवस कृष्ण एकादशी पर आ सके । किन्तु यद्यपि इससे चौदहवे दिन की रात्रि की संगती बैठती है, फिर भी वह लड़ाई के प्रथम, छठे, तथा सातवे दिन के संध्याकाल के वर्णन से विसंगत ही रहता है ।

रजनीमुखे सुरौद्रे तु वर्तमाने महाभये ।
अवहारं ततः कृत्वा सहिताः कुरुपाण्डवाः ।
न्यविशन्त यथाकालं गत्वा स्वशिबिरं तदा ॥ ८० ॥

“ उस समय कौरव पांडव सेना एक दूसरे से इस प्रकार भिड गई कि दोनों ओर के सैनिक अत्यंत थक कर कई तो भागने लगे और कई आहत हुवे। इस दशा में रात्रिकाल प्राप्त हुवा और हमें पीछे चलनेवाले सेवक बराबर दिखनेमें कठिनाई आने लगी । उस समय कौरव पांडवों ने अपनी अपनी सेना को वापिस लौटाया। तदुपरान्त अत्यंत रौद्र तथा महाभयंकर प्रतीत होनेवाले उस रात्रिप्रारंभ-काल में कौरव तथा पांडव एकसाथ युद्ध से निवृत्त हुवे, और शिबिरों में पहुँचकर यथासमय विश्राम करने लगे। ” अब सवाल यह उठता है कि, यहाँ कहे अनुसार उस समय संजयादि योद्धाओं को अपने अनुचर—यानी योद्धाओं के लिये धनुष्य बाणादि की अतिरिक्त सामग्री लेकर उनके पीछे पीछे चलनेवाले सेवक—दिख नही रहे थे। तो क्या इस समय सब दूर अंधेरा छा गया था ? किन्तु प्रथम गणनानुसार तो उस रात्रि को शुक्ल चर्तुदशी थी। फिर यह विरोध कैसा ?

यहाँ प्रारंभ में ही उल्लेखनीय एक बात यह है कि, इन श्लोकों में ‘ नापश्याम ततोऽनुगान् ’ के स्थान पर महाभारत के कुछ पोथीयों में ‘ नापश्याम ततो रणम् ’ ऐसा भी पाठभेद होकर, पूना की भांडारकर संस्था ने उसी को प्रमाणित माना है। किन्तु उसका सीधा अर्थ यही होगा कि उस समय योद्धाओं को रणक्षेत्र भी दृश्यमान न हो रहा था (इतना घोर अंधकार छा गया था); और यह वर्णन प्रथम तिथि गणना की शुक्ल चतुर्दशी एवं द्वितीय गणना की शुक्ल सप्तमी इन दोनों के भी स्पष्टतया विरोध में है । अतः ‘ नापश्याम ततोऽनुगान् ’ पाठ का विशेष रूप से विचार करके देखें।

इस संबंध में सर्वप्रथम तथ्य यह है कि छठे तथा सातवे दिनों के समान, इस आठवे दिन भी, लड़ाई सूर्यास्त के बाद कुछ समय चालू रही थी। इस रोज के सूर्यास्त का उल्लेख निम्न स्थल पर आता है।

एवं तव बलं सर्वं हैडिम्बेन दुरात्मना ।
सूर्यास्तमनवेलायां प्रभग्नं विद्रुतं दिशः ॥ (भीष्मपर्व ९४।५०)

अर्थात्, सूर्यास्त के समय (हिडिंबापुत्र) घटोत्कच के भयानक पराक्रम से कौरव सेना त्राहि भगवान् करने लगी। इसके बाद दुर्योधन भीष्म के पास गया। भीष्म ने उसको समझाकर भगदत्त को घटोत्कच के प्रतीकारार्थ भेजा। इसपर पुनः भयानक संग्राम छिड गया (अध्याय ९५)। अतः यह संग्राम स्पष्टतया सूर्यास्त के बाद हुवा। यद्यपि कूट का वातावरण निर्माण कर पाठकों को भ्रमित करने के हेतु महाभारत के रचयिता ने सूर्यास्तोपरान्त हुई इस लड़ाई के वर्णन के बीच भीष्म संग्राम का भी एक उल्लेख कर दिया है (९६।१५)। किन्तु वह कुछ भी हो, अभी कहे अनुसार भगदत्त-घटोत्कच संग्राम सूर्यास्त के बाद ही हुवा इसमें संदेह नही । निशाचर घटोत्कच का बल उस विशिष्ट समयपर विशेष वृद्धिंगत भी होता था। किन्तु इसके अन्य भी कुछ संकेत हैं। घटोत्कच ने भगदत्त पर जो त्रिशूल फेका था वह “ विस्फुलिंगमालाभिः समन्तात् परिवेष्टितः ” (९५।६०) यानी ‘ अग्निस्फुलिंगों की माला से चारों ओर घिरा हुवा ’ दिख रहा था। ऐसी चिनगारियाँ सूर्यास्त के बाद ही दृश्यमान हो सकती हैं। फिर यह संग्राम चलते चलते ‘ रात्रिः समभवत् तत्र ’ ऐसा

कहा है, जिससे भी उसका सूर्यास्तोपरान्त होना सिद्ध होता है। पूर्व में भीष्मनिधनतिथि के संदर्भ में कहे अनुसार, शुद्ध शास्त्रीय परिभाषा में ‘ रात्रि ’ या ‘ रजनी ’ यह ‘ निशा ’ से कुछ छोटी होकर, उसमें दोनों ओर के संध्याकाल समाविष्ट नही होते । सूर्यास्त होतेही ‘ निशा ’ आरंभ हो जाती है; और कुछ समय के बाद ‘ रात्रि ’ का प्रारंभ होता है। जहाँ सूर्यास्त के तुरन्त बाद आनेवाले क्षणों का संबंध आता है, वहाँ महाकवि ‘ रात्रि ’ शब्द का प्रयोग न करते ‘ निशा ’ या केवल ‘ संध्याकाल ’ कहते हैं; उदाहरणार्थ देखिये, द्वितीय दिन का वर्णन (भीष्मपर्व ५५।४३), तृतीय दिन का वर्णन (५९।१३३), चतुर्थ दिन का वर्णन (६४।८१, ८६), पाँचवे दिन का वर्णन (७४।३७), सातवे दिन का वर्णन (८६।५२), तेरहवे दिन का वर्णन (द्रोणपर्व, ५०।३, ७२।१), तथा पन्द्रहवे दिन का वर्णन (कर्णपर्व, १०।५)।

इसके बाद दूसरी महत्त्व की बात यह है कि, यद्यपि घटोत्कच-भगदत्त संग्राम इस प्रकार सूर्यास्त के बाद हुवा था, फिरभी उसके वर्णन में अंधकार का कोई उल्लेख मिलता नहीं । अर्थात् पूर्व के दो दिनों के समान यहाँ भी स्वाभाविक ही चन्द्रप्रकाश सूचित होता है। जैसा कि हमने देखाही है, जहाँ अंधकार होता है वहाँ महाकवि उसका स्पष्ट उल्लेख करते हैं।

किन्तु यदि सूर्यास्त के बाद उस रोज लड़ाई चालू रही थी और चन्द्रप्रकाश भी था, तो कुछ समय बाद ‘ नापश्याम ततोऽनुगान्’ कैसा कहा? यहाँ महर्षि व्यास का सूक्ष्म आशय देखिये। पूर्व में मैंने बताया ही है कि स्वयं संजय, यद्यपि वह धृतराष्ट्र का युद्ध-वार्ताहर था, उस युद्ध में कौरवों की ओरसे प्रत्यक्ष रूप से लड़ता भी था। वह केवल पुराणों का कथाकार या ‘संवाददाता’ नहीं था। और यहाँ संजय हमें (अर्थात् कौरव योद्धाओं को) अपने अनुचर नहीं दिख रहे थे ऐसा कह रहा है। उधर महाभारतकार ने यह भी लिख रखा है कि उस युद्ध में कौरव सेना रणक्षेत्र के पश्चिम भाग में स्थित थी।

ते समेत्य यथान्यायं धार्तराष्ट्रा महाबलाः ।
कुरुक्षेत्रस्य पश्चार्धे व्यवातिष्ठन्त दंशिताः ॥ (उद्योगपर्व १९५/११)

“ वहाँ पहुचनेपर शूर कौरव सेना शस्त्रों से सुसज्ज होकर, कुरुक्षेत्र के पश्चिम भाग में यथोचित रीति से स्थित हुई।” इसीका मतलब यह होता है कि लड़ते समय कौरव सेना का मुँह पूर्व दिशा की ओर होता था। इस सबका ठीक विचार करने पर संजय के उन उद्गारों का निम्न आशय स्पष्ट होता है। (शुक्ल चतुदर्शी के) उस रात्रिप्रारंभ काल में स्वच्छ चन्द्रप्रकाश सामनेसे हमारे ऊपर आ रहा था, और इसलिये हमारी स्वयं की ही छाया हमारे पीछे हमारे अनुचरों पर गिरकर वे हमें ठीक प्रकार से नही दिखने लगे। और वह छाया भी एक दो व्यक्तियों की नहीं, अपितु अगणित हाथी, रथ आदि से युक्त पूरी विशाल सेना की !

इसके विपरीत जहाँ चन्द्रप्रकाश रहित शुद्ध अंधकार की कल्पना व्यक्त करना है, वहाँ महाभारत में एक बार नहीं अपितु कई बार स्पष्ट कहा है कि, उस समय किसी को भी आगे या पीछे कुछ भी नही दिख रहा था। इस संदर्भ में पाठक लड़ाई के प्रथम दिन (अमावास्या),नववे दिन (कृष्ण प्रतिपदा), तथा ग्यारहवे दिन (कृष्ण पंचमी) का सायंकालीन वर्णन, जो अभी

ऊपर उद्धृत किया है, फिरसे देख लें । और उसके अलावा भी चौदहवे दिन (कृष्ण द्वादशी) के पूर्वरात्रि समय का निम्न वर्णन देखिए—

तमसा चावृते लोके न प्राज्ञायत किंचन ॥ (द्रोणपर्व १५४/२२)

" सारी भूमि अंधकार से व्याप्त होकर किसी को कुछ भी समझ में नही आ रहा था "। तथा लड़ाई के सोलहवे रोज (अमावास्या) को सूर्यास्त होते ही --

गिरिमस्तं समासाद्य प्रत्यपद्यत भानुमान् ॥
तमसा च महाराज रजसा च विशेषतः ।
न किंचित् प्रत्यपश्याम शुभं वा यदि वाशुभम् ॥ (कर्णपर्व ३०/३७, ३८)

" सूर्य का अस्त हो गया, और सर्वत्र अंधकार और उसमें भी विशेषरूप से धूल व्याप्त हो जानेसे हमें शुभ या अशुभ कुछ भी नही दिख रहा था । "

यहाँ एक और स्पष्टीकरण प्रस्तुत है। यदि सामनेसे आने वाले चन्द्रप्रकाश के कारण कौरव योद्धाओं की उनके पीछे गिरनेवाली छाया की ही अड़चन थी, तो शुक्ल पक्ष के उस चतुर्दशी को वह प्रत्यक्ष सूर्यास्त से ही होनी चाहिये थी; फिर घडी दो घडी और जाकर रात्रिप्रारंभ समय तक भी लड़ाई चालू क्यों बताई गई ? इस का उत्तर । अस्तंगत सूर्य की लालिमा का, सन्धिप्रकाश संध्याकाल में (निशारंभ की घडीयों में) पश्चिम से, यानी कौरव सेना की पीछेसे, आता रहा; किन्तु रात्रिप्रारंभ तक वह भी बन्द हो गया और उधर पूर्व दिशा में चन्द्रमा का (करीब करीब पूर्ण) बिम्ब आकाश में और ऊपर उठकर, उससे सामने की ओरसे आनेवाले प्रकाश किरणों के कारण पश्चिम दिशा की छाया और भी गहरी हो गई !

इस प्रकार ' नापश्याम ततोऽनुगान् ' यह सूक्ष्म वर्णन कौरव सेना की पीछे गिरनेवाली छाया सूचित कर, आठवे दिन की शुक्ल चतुर्दशी से पूर्णतया सुसंगत है । और इस प्रबन्ध में व्यक्त होने वाले महाभारत युद्ध के कुल कालगणनात्मक रहस्य एवं युद्धारम्भ घोषणा से भीष्मनिधन तक की सारी तिथिगणना यदि ठीक है, तो लड़ाई के आठवे दिन के वर्णन में ' नापश्याम ततो रणम् ' यह महाभारतकार का मूल पाठ होने का सम्भव बहुतही कम होकर, 'नापश्याम ततोऽनुगान्' ही मूल पाठ होना चाहिये । बात इतनीहि कि, उनका मार्मिक गूढ आशय न जानने से किसी ने तो भी उसमें ' अनुगान् ' के स्थान पर ' रणम् ' शब्द बाद में डाला होना चाहिये । उसका भी स्वाभाविक कारण यह है कि, नववे दिन के वर्णन में स्वयं महाभारतकार ने सूर्यास्त के बाद 'नापश्याम ततो रणम्' ये शब्द संजय के मुँह में रखे हैं । और वहाँ पर वे पूर्णतया उचित ही है; क्यों कि इस प्रबन्ध में दी हुई तिथिगणना के अनुसार उस दिन कृष्ण प्रतिपदा थी । किन्तु आठवे दिन की तिथि बिलकुल भिन्न प्रकार की थी । और इस सब के अलावा, यदि मूल महाभारत में आठवे दिन के वर्णन में भी वे ही शब्द होते तो उनके स्थान पर ' नापश्याम ततोऽनुगान् ' यह पाठ जो वस्तुतः सूक्ष्म अर्थ से युक्त किन्तु बाह्यतः कतई अर्थहीन प्रतीत होता है, बाद में और किसी ने लिख देने का कोई कारण दिखता नही ।

फिर भी यदि आठवे रोज के समाप्ति वर्णन में ' नापश्याम ततो रणम् ' यही पाठ स्वीकारने का आग्रह हो, तो ' रणम् ' का अर्थ रणभूमि के बजाय प्रत्यक्ष लड़ाई किया जा सकता है।

इस प्रकार उस वचन का अर्थ होगा, " हमने (यानी न केवल कौरव पक्ष ने अपितु दोनों पक्षों ने) उसके बाद लड़ाई जारी नही देखी; अर्थात् लड़ना स्थगित हो गया । " नववे दिन के संबंध में भी महाकवि ने ऐसेही शब्दोंका प्रयोग किया है; किन्तु वहाँ स्पष्ट बताया है कि (देखिये ऊपर उद्धृत भीष्मपर्व का श्लोक १०७/१) सूर्यका अस्त होवे ही ' संध्या ' (जो सूर्यास्त के तुरन्त बाद प्रारंभ होती है) ' घोरा ' अर्थात् विशेष भयानक प्रतीत होने लगी और उसी समय लड़ना बंद हो गया । इसके विपरीत आठवे रोज लड़ना सूर्यास्त के बाद भी संध्यासमय में चालू रहा, किन्तु जब रात्रि (जो संध्यासमय के बाद प्रारंभ होती है) आई तब लड़ना बंद हो गया । यह सब प्रथम तालिका की तिथियों से ठीक सुसंगत है; क्यों कि जहाँ आठवे रोज शुक्ल चतुर्दशी होने से लड़ाई सूर्यास्त के बाद भी चालू रह सकी, नववे रोज कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा होने से लड़ाई सूर्यास्त से ही बंद हो गई ।

धर्मयुद्ध के नियम

जहाँतक मुझे ज्ञात है, विभिन्न दिनों पर सूर्यास्त के समय चन्द्रप्रकाश के अस्तित्व या अभाव सूचक इन सूक्ष्म संकेतों पर महाभारत के अध्ययन में अभी तक कुछ भी ध्यान नही दिया गया । किन्तु वे प्रत्यक्ष लड़ाई के दिनों की विशिष्ट तिथियों की अत्यंत महत्त्वपूर्ण पुष्टि करते हैं; तथा साथसाथ, बीच के अवकाश दिनों का जोरदार अप्रत्यक्ष प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं । और भी आश्चर्य की बात तो यह है कि, उस युद्ध में कई रोज सूर्यास्त के बाद भी लड़ाई चालू रहने के इन उल्लेखों का, न केवल तिथियों की दृष्टि से, अपितु इतना पूर्णतया दुर्लक्ष किया गया कि यह आम धारणा प्रचलित हो गई कि महाभारत युद्ध हर रोज ठीक सूर्यास्त पर समाप्त होता था (और दोनों पक्ष रातभर मित्रता से रहकर अगले सूर्योदय पर फिर लड़ने लग जाते थे) ! किन्तु वस्तुतः न वैसा प्रतिदिन हुवा, न हि कौरवपांडवों का वैसा युद्धनियम भी था । बात इतनी ही है कि, जिन शब्दों में महाकवि ने कौरव पांडवों के उभयमान्य युद्धनियम व्यक्त किये हैं उनमें भी कुछ संदिग्ध रचना है । महाभारत में दिये उन नियमों का कुछ संबंधित अंश इस प्रकार है—

ततस्ते समयं चक्रुः कुरुपांडवसोमकाः ॥ (भीष्मपर्व १/२६)
धर्मान् संस्थापयामासुर्युद्धानां भरतर्षभ ।
निवृत्ते विहिते युद्धे स्यात्प्रीतिर्नः परस्परम् ॥ २७ ॥
यथापरं यथायोगं न च स्यात्कस्यचित् पुनः ।
वाचा युद्धप्रवृत्तानां वाचैव प्रतियोधनम् ।
निष्क्रान्ताः पृतनामध्यात् न हन्तव्याः कदाचन ॥ २८ ॥
रथी च रथिना योध्यो गजेन गजधूर्गतः ।
अश्वेनाश्वी पदातिश्च पदातेनैव भारत ॥ २९ ॥

" तदुपरान्त कौरव, पांडव तथा सोमक वीरों ने उस युद्ध में लड़ाई नियमित करने हेतु कुछ नियम बनाये । युद्ध के दरम्यान प्रत्यक्ष लड़ाई से निवृत्त होने के समयों में हम सब एक दूसरे से मित्रता का बर्ताव करेंगे (धोखे से हमला नही करेंगे) । ऐसे (विश्रांति के) समयों में कोई भी किसी से शत्रुता का व्यवहार नही करेगा लड़ाई के दरम्यान शब्दों का जबाब शब्दों से ही

दिया जावेगा; रणभूमि छोडकर भागनेवाले की कदापि हत्या नही की जावेगी। रथी का सामना रथी से ही होगा; हाथीसवार का हाथीसवार से ही; इसी प्रकार घुडसवार घुडसवार से ही भिडेगा, तथा पादचारी पादचारी से।" यहाँ स्पष्टतया ध्यान देने योग्य है कि महाकवि केवल 'निवृत्ते विहिते युद्ध' ('युद्ध के दरम्यान प्रत्यक्ष लड़ाई से निवृत्त होने के समयों में') इतनाही कह रहे हैं। फिर भी महाभारत के अभ्यासक, भाषांतरकार एवम् भाष्यकार उसमें अपनीही ओरसे 'सूर्यास्त के बाद,' 'संध्याकाल में' या 'रात्रि समय में' आदि जोड देते हैं[३२]। किन्तु इस लेख के पाठक अब समझही गये होंगे कि महाकवि ने अपने उन शब्दों में युद्धकाल के बीच आनेवाले पूरे अवकाश दिन भी खूबी से अंतर्भूत कर लिये हैं; और साथ ही यह कहीं नही कहा है कि लड़ाई से ऐसी अंतरिम निवृत्तियाँ ठीक सूर्यास्त पर ही प्रारंभ होती थी तथा उसके बाद आनेवाले प्रथम सूर्योदय पर ही समाप्त होती थी।

तेरहवे अवकाशदिन का स्पष्ट प्रमाण

महाकवि ने अवकाशदिन कुशलता से छिपाने के साथ साथ उन के शोध के लिए कैसे मार्मिक प्रत्यक्ष संकेत भी रखे हैं यह देखना बहुत मनोरंजक है। उदाहरणस्वरूप दो अवकाशदिनों के प्रत्यक्ष प्रमाण यहाँ प्रस्तुत है।

तेरहवे रोज कौरव सेना के अति जटिल चक्रव्यूह से बाहर निकलने का असफल प्रयास करते हुए वीर बालक अभिमन्यु का जयद्रथ, द्रोण आदि ने मिलकर वध किया। उस दिन सूर्यास्त पर ही युद्ध स्थगित हुवा। रणभूमि से लौटने पर अर्जुन को अभिमन्यु वध का अत्यंत दुःखद समाचार मिला। बदले की भावना से व्याप्त होकर उसने तत्काल प्रतिज्ञा की कि लड़ाई के अगलेही रोज सूर्यास्त के पूर्व वह जयद्रथ का वध करेगा अन्यथा स्वयं अग्निप्रवेश करेगा। गुप्तचरों द्वारा उसकी तुरंत सूचना मिलकर जयद्रथ ने दुर्योधन के पास जाकर किसी भी परिस्थिति में पूर्ण संरक्षण का आश्वासन प्राप्त किया। इसके बाद वे दोनों उसी संबंध में सेनापति द्रोण के पास गये। उस समय रात्रिकाल था।

एवमाश्वासितो राजन् पुत्रेण तव सैन्धवः।
दुर्योधनेन सहितो द्रोणं रात्रावुपागमत् ॥ द्रोणपर्व ७४/२१ ॥

"राजा (धृतराष्ट्र), इस प्रकार दुर्योधन द्वारा आश्वासन पानेपर जयद्रथ उसके साथ उस रात्रि-समय में द्रोण के पास पहुंचा।" इधर तुरन्त अपनी गुप्तचर सेना द्वारा इसका समाचार पाकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को चेतावनी दी कि उसने अविचारपूर्वक जल्दबाजी में उक्त प्रतिज्ञा कर अत्यंत धोखा मोल लिया। उत्तर में अर्जुन ने असीम पराक्रम कर जयद्रथ वध की प्रतिज्ञा पूर्ण करनेका विश्वास व्यक्त किया। फिर भी उस प्रतिज्ञा से चिंतित होकर अर्जुन एवं श्रीकृष्ण दोनों को उस रात्रि में नींद नही आई।

तां निशां दुःखशोकार्तौ निःश्वसन्ताविवोरगौ।
निद्रां नैवोपलेभाते वासुदेवधनंजयौ ॥ ७७/१ ॥

३२. इसके दो स्पष्ट उदाहरणों के लिये देखिये, श्री राजगोपालाचार्य का बहुप्रसारित 'महाभारत' (अंग्रेजी आवृत्ति पृष्ठ २०५); तथा गीता प्रेस के 'महाभारत' में उक्त श्लोक का हिंदी भाषांतर।

"दुःख शोक से ग्रस्त होकर, सर्प समान लंबी सांस लेते हुए, श्रीकृष्ण एवं अर्जुन को उस रात्रि में नींद नही आई।" इस रात्रि के बाद सूर्योदय के समय वे दोनों संतप्त थे, तथा अनेक अशुभ शकुन हो रहे थे; जिसका वर्णन इस विवेचन में विशेष महत्त्व का है—

नरनारायणौ क्रुद्धौ ज्ञात्वा देवाः सवासवाः।
व्यथिताश्चिन्तयामासुः किं स्विदेतद् भविष्यति ॥ द्रोणपर्व ७७/२ ॥
ववुश्च दारुणा वाताः रुक्षा घोराभिशंसिनः।
सकबन्धस्तथाऽऽदित्ये परिधिः समदृश्यत ॥ ३ ॥
शुष्काशन्यश्च निष्पेतुः सनिर्घाताः सविद्युतः।
चचाल चापि पृथिवी सशैलवनकानना ॥ ४ ॥
चुक्षुभुश्च महाराज सागरा मकरालयाः।
प्रतिस्रोतः प्रवृत्ताश्च तथा गन्तुं समुद्रगाः ॥ ५ ॥
रथाश्वनरनागानां प्रवृत्तमधरोत्तरम्।
क्रव्यादानां प्रमोदार्थं यमराष्ट्रविवृद्धये ॥ ६ ॥
वाहनानि शकृन्मूत्रे मुमुचू रुरुदुश्च ह।
तान् दृष्ट्वा दारुणान्सर्वानुत्पाताँल्लोमहर्षणाम् ॥ ७ ॥
सर्वे ते व्यथिताः सैन्यास्त्वदीया भरतर्षभ।
श्रुत्वा महाबलस्योग्रां प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः ॥ ८ ॥

"नर (अर्जुन) तथा नारायण (श्रीकृष्ण) क्रुद्ध होने का समाचार पाकर इन्द्रादि देवता उद्विग्न होकर चिंता करने लगे कि अब क्या होनेवाला है?—२. रुक्ष, भयसूचक एवं दारुण वायु बहने लगे; सूर्यबिंब में शिररहित शवसमान भयानक आकृति सहित एक अत्यंत अशुभ घेरा दिखाई देने लगा—३. विना वर्षा के ही आकाश से बिजली तथा गर्जना के साथ वज्रपात होने लगे; पर्वत तथा वनों सहित समग्र पृथ्वी कांपने लगी—४. भयानक जलचरों के निवासस्थान सागर अत्यंत क्षुब्ध हो उठे; समुद्रगामी नदियाँ विपरीत दिशा में अपने उगम की ओर बहने लगी—५. रथों के अश्व, मनुष्य तथा हाथीयों के दोनों ओष्ठ फडकने लगे, जो मांसभक्षी प्राणियों को आनंददायक तथा यमराज्य की वृद्धि का सूचक था—६. हाथी, घोडे आदि वाहन मलमूत्र करने तथा रोने लगे; उन सब रोमांचकारी दारुण उत्पातों को देख तथा महाबली सव्यसाची अर्जुन की उस प्रतिज्ञा का समाचार सुनकर सारे कौरव योद्धा उद्विग्न हो गये—७,८"।

इस समय अर्जुन ने श्रीकृष्ण से निवेदन किया कि वे जाकर सुभद्रा तथा उत्तराका सान्त्वन करें। अतः श्रीकृष्ण अर्जुन के शिबिर में गये।

ततोऽर्जुनगृहं गत्वा वासुदेवः सुदुर्मनाः।
भगिनीं पुत्रशोकार्तामाश्वासयत दुःखिताम् ॥ ७७/११ ॥

"इसपर भगवान् श्रीकृष्ण अत्यंत दुःखी मन से अर्जुन के शिबिर में गये, और पुत्रशोक से पीडित अपनी दुःखी बहन का सान्त्वन करने लगे।" इस समय श्रीकृष्ण ने सुभद्रा से कहा—

प्राप्स्यते चाप्यसौ पापः सैन्धवो बालघातकः।
अस्यावलेपस्य फलं ससुहृद्गणबान्धवः ॥ ७७/१८ ॥
व्युष्टायां तु वरारोहे रजन्यां पापकर्मकृत्।
न हि मोक्ष्यति पार्थात् स प्रविष्टोऽप्यमरावतीम् ॥ १९ ॥
श्वः शिरः श्रोष्यसे तस्य सैन्धवस्य रणे हृतम्।
समन्तपञ्चकाद् बाह्यं विशोका भव मा रुदः ॥ २० ॥

"सुभद्रे, अभिमन्यु के समान बालक का वध करनेवाला यह पापी जयद्रथ रात बीतने पर अपने मित्र तथा बांधवों सहित इस कृत्यका फल भोगेगा। वह इन्द्र की अमरावती में जाकर छिप गया तो भी अर्जुन के हाथ से नही बचेगा। कल तुम सुनोगी कि रण में जयद्रथ का शिर काटकर समन्तपंचक क्षेत्र के बाहर फेक दिया गया है। शोक छोड दे तथा रोना बंद कर।"

अब यहां अत्यंत महत्त्व का प्रश्न यह है कि इसमें श्रीकृष्ण द्वारा उल्लेखित रात, जिसके बीतनेपर जयद्रथवध होनेवाला था, कौनसी थी? ऊपर के विस्तृत विवरण से पाठकों को ज्ञात हो ही गया है कि, अभिमन्यु वध तथा अर्जुन प्रतिज्ञा के पश्चात् एक रात्रि तो निकलही चुकी थी। स्पष्टतः श्रीकृष्ण द्वारा उल्लेखित वह रात्रि **उस अवकाशदिन की थी**, जिस दिन के प्रातःकाल में श्रीकृष्ण का सुभद्रा से यह संभाषण हो रहा था। सुभद्रा, द्रौपदी, उत्तरा आदि का सान्त्वन कर श्रीकृष्ण फिर अर्जुन के पास आये; और वहांसे वे तथा अन्य राजा लोग अपने अपने शिबिरों में चले गये।

ततोऽभ्यनुज्ञाय नृपान् कृष्णो बन्धूंस्तथार्जुनम्।
विवेशान्तःपुरे राजंस्ते च जग्मुर्यथालयम् ॥ ७८/४४ ॥

"तदनन्तर उपस्थित राजाओं से, बान्धवों से तथा अर्जुन से अनुमति लेकर श्रीकृष्ण स्वयं के अंतःपुर में गये और उसीके साथ वे राजा लोग भी अपने अपने शिबिरों में चले गये।" अभिमन्युवध के दूसरे रोज सुबह की यह घटना थी। यदि वह भी प्रत्यक्ष लड़ाई का ही दिन होता तो इस संभाषण के बाद श्रीकृष्ण तथा अर्जुन आदि सब योद्धा अपने शिबिरों में जाते या सीधे रणक्षेत्र की ओर?

किन्तु इस अवकाश दिन का और भी स्पष्ट प्रमाण देखिये। उक्त घटनाओं के बाद फिर एक रात्रि और आई, जिसमें श्रीकृष्ण ने अर्जुन की शय्या के पास भगवान शंकर की पूजा की सामग्री रखवाकर उसको शांत चित्त से सो जाने को कहा, तथा वे स्वयं भी सो गये—

सुप्यतां पार्थ भद्रं ते कल्याणाय व्रजाम्यहम्।
स्थापयित्वा ततो द्वाःस्थान् गोप्तॄंश्चात्तायुधान् नरान् ॥ ७९/६ ॥
दारुकानुगतः श्रीमान् विवेश शिबिरं स्वकम्।
शिश्ये च शयने शुभ्रे बहुकृत्यं विचिन्तयन् ॥ ७ ॥

"'अर्जुन, तुम्हारा कल्याण हो, अब शयन करो, मै तुम्हारे कल्याण साधन के हेतु जा रहा हूँ', ऐसा कहकर श्रीकृष्ण ने वहां शस्त्रधारी द्वारपाल एवम् रक्षक नियुक्त किये; और (सारथि) दारुक के साथ स्वयं अपने शिबिर में चले गये। वहां (अर्जुन के हित में) बहुतसे संभाव्य कार्यकलापों पर

विचार करते हुए वे शुभ्र शय्यापर शयन कर गये।" इस (द्वितीय) रात्रि के पूर्वार्ध में श्रीकृष्ण को नींद लगी; किन्तु मध्यरात्रि में वे जाग उठे, और अर्जुन की प्रतिज्ञा का तीव्र स्मरण होकर उस विषय में सारथि दारुक से उनका काफी समय तक संभाषण होता रहा।

तस्यां रजन्यां मध्ये तु प्रतिबुद्धो जनार्दनः ॥ ७९/२० ॥
स्मृत्वा प्रतिज्ञां पार्थस्य दारुकं प्रत्यभाषत ॥ २१ ॥

"उस रात्रि के मध्यकाल में भगवान् श्रीकृष्ण जाग उठे, और अर्जुन की प्रतिज्ञा का स्मरण कर दारुक से बोले……"। यहां 'प्रतिबुद्ध' शब्द श्रीकृष्ण की उस संभाषण के पूर्व निद्रावस्था बताता है। इधर अर्जुन को भी उस रात्रि में निद्रा आकर उसने एक 'स्वप्न' देखा, जिसमें श्रीकृष्ण उसके पास आये।

कुन्तीपुत्रस्तु तं मन्त्रं स्मरन्नेव धनंजयः।
प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन् मुमोहाचिन्त्यविक्रमः ॥ ८०/१ ॥
तं तु शोकेन संतप्तं स्वप्ने कपिवरध्वजम्।
आससाद महातेजा ध्यायन्तं गरुडध्वजः ॥ २ ॥

"अद्भुत पराक्रमी अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा के पालन की चिंता करता हुवा तथा (भगवान शंकर की प्रार्थना संबंधी) मन्त्रका ध्यान करता हुवा गहरी नींद (या तन्द्रावस्था) के अधीन हो गया—१. उस समय चिन्ताग्रस्त अर्जुन के 'स्वप्न' में भगवान श्रीकृष्ण उसके पास आये—२"। इसी 'स्वप्नावस्था' में श्रीकृष्ण अर्जुन को भगवान् शंकर के पास ले गये, जिन्होंने प्रसन्न होकर अर्जुन को महाप्रतापी पाशुपतास्त्र प्रदान किया (अध्याय ८०, ८१)। अत्यंत हर्षित होकर श्रीकृष्ण एवं अर्जुन दोनों तत्काल शिबिर में लौटे।

अनुज्ञातौ क्षणे तस्मिन् भवेनार्जुनकेशवौ।
प्राप्तौ स्वशिबिरं वीरौ मुदा परमया युतौ ॥ ८१/२४ ॥

"भगवान् शंकर की अनुज्ञा लेकर वे दोनों वीर (श्रीकृष्ण एवं अर्जुन) उसी क्षण अत्यंत हर्ष के साथ अपने शिबिर को लौट आये"। परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि, यह 'स्वप्न' श्रीकृष्ण द्वारा निर्मित अर्जुन का एक गूढावस्था का अनुभव था; क्यों कि महाभारत का यह भी कहना है कि इस रात्रि के समाप्ति तक स्वयं श्रीकृष्ण दारुक से संभाषण कर रहे थे—

तयोः संवदतोरेवं कृष्णदारुकयोस्तथा।
सात्यगाद् रजनी राजन् अथ राजान्वबुध्यत ॥ ८२/१ ॥

"श्रीकृष्ण और दारुक का इस प्रकार संभाषण चलते चलते रात बीत गई; और राजा युधिष्ठिर भी जाग गये"।

इन सब बातों से यह स्पष्ट होता है कि वह **द्वितीय रात्रि**, जिसमें अर्जुन को नींद तथा उस गूढ 'स्वप्नावस्था' का अनुभव हुवा था (तथा श्रीकृष्ण को भी पूर्वार्ध में अच्छी नींद आकर शेष रात्रि में उन्होंने दारुक से संभाषण किया था), उस प्रथम रात्रि से निश्चित ही भिन्न थी, जिसमें उन दोनों को बिलकुल निद्रा नहीं आई थी। द्वितीय रात्रि के उस 'स्वप्न' का द्रोणपर्व के अंत में भी व्यास-अर्जुन संवाद में उल्लेख आया है (२०२/१४५, १४६)।

इस के बाद फिर द्वितीय सूर्योदय व प्रातःकाल भी आया। सेना उस समय लड़ाई के लिये तैयार हो रही थी। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर के पास आकर (८२/२९-३४) अर्जुन की प्रतिज्ञापूर्ति का आश्वासन दिया। इतने में अर्जुन भी वहाँ आ पहुचे—

तथा तु वदतां तेषां प्रादुरासीद्र धनंजयः।
दिदृक्षुर्भरतश्रेष्ठं राजानं ससुहृद्गणम् ॥ ८४/१ ॥

" उनका इस प्रकार संभाषण हो रहा था इतने में स्वयं अर्जुन अपने सुहृदों के साथ बैठे हुए राजा युधिष्ठिर के दर्शनार्थ वहाँ आया।" यहाँ फिर विशेष महत्त्व की बात यह है कि इस समय अर्जुन तथा श्रीकृष्ण दोनों इस द्वितीय प्रातःकाल में विशेष प्रसन्न मुद्रा में दिख रहे थे (जब कि प्रथम रात्रि के बाद वे संतप्त एवं चिन्ताग्रस्त थे)। महाकवि ने यह बात विशेष रूप से वर्णन की है। अर्जुन को देखकर युधिष्ठिर ने कहा—

व्यक्तमर्जुन संग्रामे ध्रुवस्ते विजयो महान्।
यादृग्रूपा च ते च्छाया प्रसन्नश्च जनार्दनः ॥ ८४/४ ॥

" अर्जुन, यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि (आज) लड़ाई में तुम्हें निश्चय ही महान विजय प्राप्त होगी। तुम्हारी मुद्रा ही यह बता रही है; तथा भगवान् श्रीकृष्ण भी प्रसन्नचित्त दिख रहे हैं"। अर्जुन ने युधिष्ठिर को उस रात्रि का ' स्वप्नानुभव ' बताया, जो सुनकर वहाँ उपस्थित सब को आनंद हुवा। फिर युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर वे सीधे युद्धस्थल गये।

अनुज्ञातास्ततः सर्वे सुहृदो धर्मसूनुना।
त्वरमाणाः सुसन्नद्धा हृष्टा युद्धाय निर्ययुः॥ ८४/८ ॥

" तदनन्तर युधिष्ठिर की अनुज्ञा प्राप्त कर, कवच आदि से पूर्णतया युक्त तथा हर्षोल्लास से प्रफुल्लित वे सब स्वजन मित्र शीघ्रता से युद्ध के लिये गये"। इस द्वितीय प्रातःकाल के समय अनेक शुभशकुन हो रहे थे (जब कि पूर्व प्रातःकाल पर अत्यंत अशुभ शकुन हुवे थे)—

सजयाशीः सपुण्याहः सूतमागधनिःस्वनः।
युक्तो वादित्रघोषेण तेषां रतिकरोऽभवत् ॥ ८४/२३ ॥
तमनुप्रयतो वायुः पुण्यगन्धवहः शुभः।
ववौ संहर्षयन् पार्थं द्विषतश्चापि शोषयन् ॥ २४ ॥
ततस्तस्मिन् क्षणे राजन् विविधानि शुभानि च ।
प्रादुरासन् निमित्तानि विजयाय बहूनि च ।
पाण्डवानां त्वदीयानां विपरीतानि मारिष ॥ २५ ॥
दृष्ट्वार्जुनो निमित्तानि विजयाय प्रदक्षिणम् ।
युयुधानं महेष्वासमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥
युयुधानाद्य युद्धे मे दृश्यते विजयो ध्रुवः ।
यथा हीमानि लिङ्गानि दृश्यन्ते शिनिपुङ्गव ॥ २७ ॥
सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र सैन्धवको नृपः ।
यियासुर्यमलोकाय मम वीर्यं प्रतीक्षते ॥ २८ ॥

" जय-शब्द, पुण्याहवाचन के मन्त्रोचार, तथा वाद्य ध्वनि के साथ सूतमागध आदि के मधुर स्वर उनका उल्हास वृद्धिंगत कर रहे थे -२३. जैसे जैसे अर्जुन आगे बढने लगा मंगल, सुगंध-युक्त एवम् पवित्र वायु उसके पीछे बहने लगी, जो उसका हर्ष बढाती हुई कौरवों को उदास कर रही थी --२४. उस समय कई शुभ शकुन हुए, जो पांडवों की विजय तथा कौरवों की पराजय सूचित कर रहे थे -२५. उन विजयसूचक शुभ लक्षणों को देख अर्जुन ने वीर सात्यकि (युयुधान) से कहा, इन शुभ चिन्हों के दर्शन से मुझे आज लड़ाई में मेरी विजय निश्चित प्रतीत हो रही है; अतः मैं अब वहीं जाता हूँ जहाँ राजा जयद्रथ यमलोक पधारने की इच्छा करता हुवा मेरे पराक्रम की प्रतीक्षा कर रहा है --२६, २७, २८"।

इस प्रकार अभिमन्यु वध के दिन की शाम और जयद्रथ वध का दिन इनके दरम्यान दो भिन्न रातें (तथा दो भिन्न प्रातःकाल) बीतने का महाभारत काव्य में ही वर्णन होने से बीच का अवकाश दिन निःसंदेह सिद्ध होता है।

अंतिम अवकाश दिन

इसीके समान युद्धकाल का अंतिम अवकाश दिन महाकवि ने कितनी कुशलता से छिपाया है देखिये।

लड़ाई के सतरहवे दिन कर्णवध हुवा। तत्पश्चात् उस रोज सायंकाल के समय लड़ाई स्थगित हुई। उस दिन का संजय ने धृतराष्ट्र को प्रस्तुत जो संक्षिप्त विवरण शल्यपर्व के प्रारंभ में है उसमें कहा है--

प्रत्युपायाम सायान्हे निर्जिताः सव्यसाचिना।
हतप्रवीरा विध्वस्ता निकृत्ता निशितैः शरैः ॥ शल्यपर्व ३.८॥

" हमारे कई प्रमुख वीर मारे जाकर, तथा हम अर्जुन द्वारा पराजित एवं तीक्ष्ण बाणों से बुरी तरह घायल होकर, (कर्णवध के पश्चात्) सायान्ह के समय रणभूमि से वापिस (शिबिरों पर) लौटे"। उधर श्रीकृष्ण तथा अर्जुन ने युधिष्ठिर के पास जाकर, जो अपने शिबिर में विश्राम कर रहे थे, कर्णवध का सुखद समाचार सुनाया। मृत कर्ण को प्रत्यक्ष देखने हेतु युधिष्ठिर श्रीकृष्ण तथा अर्जुन के साथ उस पूर्वरात्रि में फिर रणभूमि पर गये। दीपों के प्रकाश में उन्होंने वहाँ कर्ण का शव देखा (कर्णपर्व ९६।३८)।

दूसरी ओर, कौरव सेना की पराभूत अवस्था देखकर कृपाचार्य ने दुर्योधन को संधि कर युद्ध समाप्त करने की सलाह दी (शल्यपर्व अध्याय ४)। किन्तु दुर्योधन ने वह असमान्य कर युद्ध चालू रखने का निश्चय व्यक्त किया। उस निर्णय के साथ प्रमुख कौरव योद्धा उस पूर्वरात्रि में रणभूमि से करीब आठ कोस दूर हिमालय पर्वत पर विश्राम के लिये गये।

एवं दुर्योधनेनोक्तं सर्वे सम्पूज्य तद्वचः।
साधु साध्विति राजानं क्षत्रियाः सम्बभाषिरे ॥ शल्यपर्व ५।४८॥
पराजयमशोचन्तः कृतचित्ताश्च विक्रमे।
सर्वे सुनिश्चिता योद्धुमुद्यमनसोऽभवन् ॥४९॥

ततो वाहान् समाश्वस्य सर्वे युद्धाभिनन्दिनः ।
ऊने द्वियोजने गत्वा प्रत्यतिष्ठन्त कौरवाः ॥५०॥
आकाशे विद्रुमे पुण्ये प्रस्थे हिमवतः शुभे ।
अरुणां सरस्वतीं प्राप्य पपुः सस्नुश्च ते जलम् ॥५१॥

"दुर्योधन के इस प्रकार कहने पर सब सैनिकों ने उसके वचन का आदर कर 'बहुत अच्छा बहुत अच्छा' कहा–४८। उन सबने अपनी हार का दुःख त्यागकर अपने मन में लड़ाई में पराक्रम करने का ही विचार पक्का किया; युद्ध चालू रखने का ऐसा पूर्ण निश्चय कर उनका हृदय उत्साह से भर गया–४९। तत्पश्चात् युद्धार्थ उत्साह से भरे हुए वे कौरव योद्धा आठ कोस से कुछ कम दूरी पर गये, और अपने वाहनों को विश्राम देकर वहाँ उन्होंने डेरा डाला–५०। वे खुले आकाश के नीचे हिमालय पर्वत के वृक्ष रहित पवित्र मंगल पठार पर (ऊंचे मैदान पर) पहुँचे; और हिमालयीन (या, कुछ लालिमा वाली) सरस्वती नदी के किनारे पर जाकर उन्होंने स्नान तथा जलपान किया––५१".

यद्यपि वे कौरव योद्धा युद्ध चालू रखने के प्रति उत्साहशील थे, फिर भी उस रात्रि में कर्णवध के कारण वे उद्विग्न ही रहे। कुरुक्षेत्र से दूर हिमालय के पठार पर उन्होंने वह रात बिताई।

अथ हैमवते प्रस्थे स्थित्वा युद्धाभिनन्दिनः ।
सर्व एव महायोधास्तत्र तत्र समागताः ॥ ६।१ ॥
शल्यश्च चित्रसेनश्च शकुनिश्च महारथः ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ॥ २ ॥
सुषेणोऽरिष्टसेनश्च धृतसेनश्च वीर्यवान् ।
जयत्सेनश्च राजानस्ते रात्रिमुषितास्ततः ॥ ३ ॥
रणे कर्णे हते वीरे त्रासिता जितकाशिभिः ।
नालभञ्शर्म ते पुत्रा हिमवन्तमृते गिरिम् ॥ ४ ॥

"युद्ध के लिये उत्साहित वे सब महायोद्धा हिमालय के मैदान पर डेरा डालकर (महत्त्वपूर्ण विचार-विनिमयार्थ) वहाँ एकत्र बैठे––६।१। शल्य, चित्रसेन, महारथि शकुनि, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, सात्वतवंशीय कृतवर्मा, सुषेण, अरिष्टसेन, वीर धृतसेन, तथा जयत्सेन आदि राजाओं ने वहीं पर वह रात्रि बिताई २,३। युद्ध में वीर कर्ण के मारे जाने से तथा विजय से उल्हसित पांडवों द्वारा त्रस्त होने से आप के पुत्र (कौरव) हिमालय पर्वत के अलावा और कहीं शान्ति प्राप्त न कर सके–४"। इस विचार-विनिमय में उन राजाओं ने दुर्योधन से प्रस्ताव किया कि युद्ध आगे चलाने के लिये कर्ण के स्थान पर प्रथम किसी योग्य व्यक्ति को सेनापति नियुक्त किया जावे। दुर्योधन ने अश्वत्थामा से इस विषय में परामर्ष माँगा। अश्वत्थामा ने शल्य का नाम प्रस्तावित किया। दुर्योधन तथा अन्य उपस्थित सब राजाओं ने उसका सहर्ष अनुमोदन किया। शल्य ने भी उसको संमति देकर आत्मविश्वास के साथ शत्रु विनाश का आश्वासन दिया।

इसके नंतर शल्य को विधिवत् अभिषेक किया गया।

एवमुक्तस्ततो राजा मद्राधिपतिमञ्जसा ॥ शल्यपर्व ७।६ ॥
अभ्यषिञ्चत सेनाया मध्ये भरतसत्तम ।
विधिना शास्त्रदृष्टेन क्लिष्टरूपो विशाम्पते ॥ ७ ॥
अभिषिक्ते ततस्तस्मिन् सिंहनादो महानभूत् ।
तव सैन्येऽभ्यवाद्यन्त वादित्राणि च भारत ॥ ८ ॥

"महाराज धृतराष्ट्र, शल्य द्वारा इस प्रकार (सम्मति तथा आश्वासन युक्त) वचन कहे जाने पर, (ततः) तत्पश्चात् (बारबार होते जा रहे पराभवों से) दुखी दुर्योधन ने शास्त्रीय विधि के अनुसार अपनी सेना के बीच मद्रराज शल्य को (सेनापति पद का) अभिषेक किया––६,७। धृतराष्ट्र, शल्य का वह अभिषेक संपन्न होते ही आपकी (कौरवों की) सेना में बडे जोरशोर से (हर्ष एवं उत्साह सूचक) सिंहनाद हुआ तथा वाद्य बजाये गये––८"।

अब यहाँ एक महत्त्व का रहस्य अत्यंत गुप्त रखा है। यद्यपि शल्य को सेनापति नियुक्त करने का निर्णय हिमालय पर (कर्णवध के रोज रात्रिप्रारंभ काल में) लिया गया था, फिर भी उसको प्रत्यक्ष अभिषेक उस रात्रि की समाप्ति बाद वहाँ से वापिस लौटकर कुरुक्षेत्र पर कौरव सेना के बीच किया गया था। संपूर्ण विशाल सेना केवल रातभर के लिये रणभूमि से इतने दूर हटाना संभव नहीं था। केवल प्रमुख नेता ही हिमालय पर गये थे। और, अभिषेक सेना की उपस्थिति में किया जाने का श्लोक ७।७,८ में स्पष्ट कहा है; सैन्यनीति के अनुसार वह आवश्यक भी था। इसके अलावा, वह अभिषेक हिमालय से वापिस आकर कुरुक्षेत्र पर ही किया गया था, इसका और भी एक सूक्ष्म प्रमाण यह है कि, वह अभिषेक होते ही कौरव सेना ने जो जोरशोर से हर्षनाद किया वह स्वयं युधिष्ठिर ने अपने शिबिर में सुना!

सैन्यस्य तव तं शब्दं श्रुत्वा राजा युधिष्ठिरः ।
वार्ष्णेयमब्रवीद् वाक्यं सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ ७।२४ ॥
मद्रराजः कृतः शल्यो धार्तराष्ट्रेण माधव ।
सेनापतिर्महेष्वासः सर्वसैन्येषु पूजितः ॥ २५ ॥

"आपकी (कौरवों की) सेना का वह हर्षनाद सुनकर युधिष्ठिर ने अपने सब योद्धाओं के सामने श्रीकृष्ण से कहा, 'दुर्योधन ने (उसकी) समस्त सेना द्वारा पूजित महाधनुर्धर मद्रराज शल्य को सेनापति बनाया है'"। हिमालय का विश्राम स्थान कुरुक्षेत्र से सोलह मील दूर था। यदि वह (अभिषेक तथा) हर्षनाद वहीं होता तो युधिष्ठिर को उसकी जानकारी गुप्तचरों से मिलती, न कि स्वयं के कानों से। इस प्रकार एक तरफ सोलह मील के अंतर का और दूसरी ओर हर्षनाद युधिष्ठिर द्वारा प्रत्यक्ष सुनने का उल्लेख कर, महाकवि ने शल्य का वह अभिषेक कर्णवध के दूसरे रोज वापिस कुरुक्षेत्र पर शिबिरों में आने बाद होने का निश्चित संकेत दिया है।

फिर भी यह बात छिपाने के लिये अन्य कई स्थानों के अनुसार यहाँ भी महाकवि ने 'ततः' का संदिग्ध उपयोग भी किया है। शल्य को सेनापति करने का हिमालय पर जो निर्णय लिया गया उसको कथन करने के बाद महाभारतकार एकदम कहते हैं कि, 'ततः' यानी तदनंतर शल्य को अभिषेक किया गया। किन्तु यहाँ 'ततः' का 'तुरन्त उसके पश्चात्' यह आशय नहीं है। बल्कि

उस 'ततः' में इस दरम्यान वे प्रमुख कौरव योद्धा हिमालय पर एक रात्रि बिताकर वापिस दूसरे रोज कुरुक्षेत्र लौटने की बात खूबी से छिपाई है।

इसी संदर्भ में दूसरी अत्यंत महत्त्व की बात यह है कि इस अभिषेक के बाद (तथा प्रत्यक्ष लड़ाई फिर शुरू होने के पूर्व) एक और रात्रि गई थी, जिसमें कौरव योद्धा (शल्य के सेनापतित्व से आश्वस्त होकर) प्रसन्नचित्त थे, जहाँ उसकी पूर्वरात्रि में (हिमालय के मैदान पर) वे अस्वस्थ एवं उद्विग्न थे।

अभिषिक्ते तथा शल्ये तव सैन्येषु मानद
न कर्णव्यसनं किंचिन्मेनिरे तत्र भारत ॥ ७। २१ ॥
हृष्टा सुमनसश्चैव बभूवुस्तत्र सैनिकाः।
मेनिरे निहतान् पार्थान् मद्रराजवशं गतान् ॥२२॥
प्रहर्ष प्राप्य सेना तु तावकी भरतर्षभ।
तां रात्रिमुषितां सुता हर्षचित्ताच साभवत् ॥ २३ ॥

"माननीय राजा धृतराष्ट्र, इस प्रकार आपकी सेना के मध्य शल्य को अभिषेक होने पर आपके सैनिकों को कर्णवध का कुछ भी शोक नहीं रहा —२१। वे सैनिक प्रसन्नचित्त एवं हर्षित होकर विश्वास करने लगे कि अब शल्य के हाथों पराभूत होकर पाण्डव निश्चय ही मारे जायेंगे –२२। इस प्रकार हर्षित होकर आपकी सेना ने बडे आनंद से रात अच्छी नींद में व्यतीत की –२३"।

कर्णवध के बाद आनेवाली इस द्वितीय रात्रि का आगे भी और उल्लेख है।

व्यतीतायां रजन्यां तु राजा दुर्योधनस्तदा।
अब्रवीत् तावकान् सर्वान् संनह्यन्तां महारथाः ॥ ८।१॥

"रात्रि समाप्त होनेपर राजा दुर्योधन ने आपके (अर्थात् कौरवों के) समस्त योद्धाओं को एकत्रित कर आदेश दिया, 'महारथियों, कवचादि से सुसज्जित होकर युद्धार्थ तैयार हो जाओ'"। और इसके बाद तुरन्त अरुणोदय पर ही युद्ध पुनः प्रारंभ हो गया (८।४५)। यदि यह रात्रि वही होती, जिसमें कौरव योद्धा कुरुक्षेत्र से सोलह मील दूर हिमालय पर सोये थे, तो यह संभव नहीं था।

स्पष्ट है कि इन दो रात्रियों के बीच आनेवाले अवकाश दिन पर ही कुरुक्षेत्र में कौरव शिबिर में शल्य को सेनापति का अभिषेक पूरे धार्मिक विधि के साथ किया गया। उस विधि का विस्तार पूर्वक वर्णन द्रोण तथा कर्ण के अभिषेकों के कथन में महाभारत में दिया होकर वह इस लेख में भी ऊपर उद्धृत किया है।

अन्त में इस अवकाशदिन का एक और भी निश्चित संकेत प्रस्तुत है। जैसा कि ऊपर बताया है, शल्य को अभिषेक होने पर कौरव सेना ने किया महान हर्षनाद सुनते ही युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से तत्काल विचार विनिमय किया। उत्तर में श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को अंतिम विजय के लिये आश्वस्त कर स्वयं युधिष्ठिर को ही लड़ाई में शल्य का वध करने का परामर्ष दिया। इस मार्गदर्शन के बाद श्रीकृष्ण 'सायंकाल' में अपने शिबिर लौटे। देखिये–

यच्च ते तपसो वीर्यं यच्च क्षात्रं बलं तव।
तद् दर्शय रणे सर्वं जहि चैनं महारथम् ॥७।४१॥
एतावदुक्त्वा वचनं केशवः परवीरहा।
जगाम शिबिरं सायं पूज्यमानोऽथ पाण्डवैः ॥ ४२ ॥

"'राजन्, आपके पूरे तपोबल, शौर्य तथा क्षात्रबल का रणभूमि में उपयोग कर महारथी शल्य का वध कीजिये'–४१; यह सलाह देकर श्रीकृष्ण पांडवों द्वारा सम्मानित होकर, सायंकाल के समय अपने शिबिर गये––४२"। क्या यह स्पष्ट नहीं कि, यह दिन जिसके **सायंकाल में** श्रीकृष्ण ने कौरव सेनापति शल्य के वधार्थ युधिष्ठिर को यह परामर्ष दिया, न तो कर्णवध का दिन था न हि शल्यवध का? कर्णवध के दिन तो शाम के पश्चात् श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा युधिष्ठिर रणभूमि पर मृत कर्ण को प्रत्यक्ष देखने गये थे, तथा उस शाम तक शल्य को अभिषेक होकर वह सेनापति होने का सवाल ही नहीं था। जैसा कि हमने ऊपर देखा है कर्णवध और शल्याभिषेक के बीच एक रात जाने का महाभारत में स्पष्ट उल्लेख भी है। और उधर शल्य अपने सेनापतित्व के पहले ही रोज की लड़ाई में माध्यान्ह में ही मारा गया; अतः उस दिन के सायंकाल में भी श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर को वह मार्गदर्शन संभव नहीं। निष्कर्ष अनिवार्य है कि, यह युधिष्ठिर-श्रीकृष्ण संवाद (तथा उसके तुरन्त पूर्व का शल्याभिषेक) **बीच के अवकाशदिन पर** ही हुवा था! आश्चर्य की बात तो यह है कि इस अंतिम अवकाशदिन की तनिक भी कल्पना के अभाव में महाभारत के देशविदेश के अगणित वाचक एवम् अभ्यासक उक्त श्लोक ७।४२ में महाकवि के इस मार्मिक शब्द 'सायं' का सदियों तक क्या अर्थ करते रहें? क्या इसी लिये महाभारत महाकाव्य को भिन्न भिन्न कालखंडों में अनेकानेक लेखकों द्वारा लिखी गई एक परस्पर विसंगत खिचडी माना जा रहा है?

अस्तु। इस प्रकार कर्णवध का अपराण्ह समय और शल्यवध का मध्यान्ह समय इन के बीच दो भिन्न रातें तथा दो भिन्न सायंकाल बता कर महाकवि ने उस प्रदीर्घ युद्धकाल का यह अंतिम अवकाशदिन सूचित किया है!

महाकवि की कूट–कुशलता

इस प्रकार के सूक्ष्म संकेतों द्वारा महाकवि ने अवकाश दिनों की विलक्षण सूचना दे रखी है। किन्तु अभीतक इनकी ओर भी महाभारत के अभ्यासकों द्वारा उचित ध्यान नहीं दिया गया। इतनाही नहीं, उनको प्रायः तथाकथित प्रक्षिप्त अंशों की कचरा पेटी तक में ढकेल दिया जाता है, केवल इसी कारण कि दैनंदिन लगातार लड़ाई की परंपरागत धारणा से उनका मेल नहीं बैठता।

यहाँ कुतूहल हो सकता है कि यदि उक्त अवकाश दिन इस प्रकार सूचित किये गये हैं तो उनके विषय में इतना दीर्घकालीन कूट कैसा बना रहा? महाकवि की कुशलतापूर्वक संदिग्ध शब्द-रचना ही इसके मूल में है। प्रथम तो वे बारबार कहते हैं कि युद्ध अठारह दिन हुवा; हालाँकि उनका वास्तविक आशय यह है कि उक्त कथन केवल प्रत्यक्ष लड़ाई के काल से संबंधित है। फिर वे कई बार 'अद्य' का प्रयोग करते हैं, जिसका साधारणतया 'अब' या 'आज' अर्थ होता है; किन्तु महाभारत युद्ध वर्णन के सूक्ष्म संदर्भ में कुछ स्थानों पर उसका आशय होता है–लड़ाई पुनः प्रारंभ होने पर। शल्याभिषेक का ही उदाहरण लीजिये। अभिषेक के बाद शल्य ने किया आवाहन महाभारत में इस प्रकार व्यक्त किया है—

अद्य चाहं रण सर्वान् पञ्चालान् सह पांडवैः ॥ ७। १३ ॥
निहनिष्यामि वा राजन् स्वर्गं यास्यामि वा हतः।
अद्य पश्यन्तु मां लोका विचरन्तमभीतवत् ॥ १४॥
अद्य सैन्यानि पाण्डूनां द्रावयिष्ये समन्ततः ॥ १९ ॥

"हे राजा (दुर्योधन), 'अद्य' मैं लड़ाई में पाण्डवों सहित समस्त पांचालों का वध करूँगा, अन्यथा मैं स्वयं मारा जाकर स्वर्ग पधारूँगा। 'अद्य' सब लोग मुझे रणभूमि पर निभयता से पराक्रम करते देखें। 'अद्य' मैं पाण्डवों की सेना को रणभूमि से भगा दूँगा।" यहाँ 'अद्य' शब्द का आशय पाठक सहज ही 'आज' लेते हैं (जैसा, देखिये गीताप्रेस का भाषांतर)। किन्तु यह केवल महाकवि द्वारा निर्मित भ्रम है। हमने ऊपर देखा ही है की शल्य के इस भाषण के बाद एक रात बीतने पर ही लड़ाई फिर प्रारंभ हुई थी। अर्थात् 'अद्य' का यहाँ मतलब अब लड़ाई पुनः प्रारंभ होते ही, या लड़ाई के अगले दिन इस प्रकार है।

इसी प्रकार महाकवि प्रायः प्रथम एक घटना का वर्णन देते हैं, और 'ततः' (तदुपरान्त) कहकर दूसरी घटना का उल्लेख करते हैं। यहाँ पाठक स्वाभाविकही समझ बैठते हैं कि वह द्वितीय घटना प्रथम घटना के तुरन्त बाद हुई होगी; किन्तु वस्तुतः महाभारतकार का आशय इतना ही होता है कि, उक्त द्वितीय घटना प्रथम के बाद तो हुई परन्तु उन दोनों के बीच कुछ समय भी गया था। फिर उसी कुशलता से महाकवि 'श्व' का प्रयोग करते हैं, जिसका अर्थ साधारण परिभाषा में शब्दशः (आगामी) 'कल' होता है। किन्तु उनके युद्ध वर्णन में उसका वास्तविक आशय 'लड़ाई का आगामी दिवस (बीच में एक अवकाश दिन छोडकर)' हो सकता है; जिस प्रकार किसी शासकीय कार्यालय की दृष्टि से शनिवार का (आगामी) 'कल' रविवार ही होना आवश्यक न होकर 'कार्यालय खुलने का आगामी दिन' अर्थात् सोमवार भी हो सकता है!

इसके अलावा कभी कभी कुछ अन्य चमत्कारिक तरीके से भी महाभारतकार भिन्न घटनाओं को मिला देते हैं। अंतिम अवकाशदिन में शल्य को अभिषेक हुवा; उस पर कौरव सेना ने बडा हर्ष-नाद किया; शल्य की स्तुति की गई; स्वयं उसने अपने पराक्रम का आश्वासन दिया; कौरव सेना को विजय का विश्वास हो गया, और तदुपरान्त वह रात्रि में शांतचित्त सो गई (देखिये, ऊपर उद्धृत श्लोक ७|२३)। यहाँ तक कौरव पक्ष का घटनाक्रम बताने के बाद महाकवि एकदम पाण्डव पक्ष की ओर मुड कर श्लोक ७।२४ (ऊपर उद्धृत) में कहते हैं कि, कौरव सेना का वह सिंहनाद स्वयं राजा युधिष्ठिर ने सुना, और उसका श्रीकृष्ण से संभाषण हुवा। वस्तुतः पाण्डव शिबिर की यह घटना कौरवों की रात्रि-निद्रा से कई घंटे पूर्व (अवकाशदिन के अपराण्ह काल में) घटी थी, न कि उस रात्रि समाप्ति के बाद। किन्तु एकदम पढ़ने में इस घटनाक्रम के बारे में मन में भ्रम पैदा हो जाता है। एक दूसरा प्रकार देखिये। उक्त अवकाशदिन की रात्रि को पाण्डवों को भी (श्रीकृष्ण के सायंकालीन आश्वासन के कारण) अच्छी नींद आई। इस विषय में महाकवि लिखते हैं—

सुष्वाप रजनीं तां तु विशल्य इव कुंजरः।
ते च सर्वे महेष्वासाः पञ्चालाः पाण्डवास्तथा ॥७।४४॥
कर्णस्य निधने हृष्टाः सुषुपुस्तां निशां तदा ॥४५॥

'(युधिष्ठिर ने) उस रात्रि में चोटरहित स्वस्थ हाथी के समान गहरी निद्रा ली।[३३] इसी प्रकार वे सभी शूर पांचाल तथा पाण्डव वीर कर्णवध के हर्ष में उस रात्रि में सुख से सोये।" वस्तुतः यह

३३. यहाँ 'विशल्य' शब्द में एक सुंदर श्लेष है। जहां हाथी के संबंध में उसका अर्थ 'किसी चोट या बीमारी से रहित' होगा, वहाँ युधिष्ठिर के संदर्भ में उसीका अर्थ '(कौरव सेनापति) शल्य के रहित, अर्थात् अंतिम लडाई में शल्य की मृत्यु के विषय मे आश्वस्त' ऐसा हो सकता है!

अवकाश दिन की रात होकर, कर्णवधोत्तर एक रात्रि इसके पहिले ही निकल चुकी थी, जिसमें भी उस हर्ष के कारण पाण्डवों ने सुख से नींद ली ही होगी। किन्तु इस द्वितीय रात्रि के संबंध में कर्णवध का विशेष उल्लेख करने से सहज ही भ्रम हो जाता है कि कर्णवध के बाद यह प्रथम रात्रि ही होगी; जिससे बीच के अवकाशदिन की ओर पाठकों का ध्यान जाता नहीं।

अन्य भी प्रमुख तिथियाँ

अब इन सब तथ्यों के आधारपर इस महायुद्ध की संपूर्ण सुसंगत दिनदर्शिका तैयार हो जाती है, जो इस लेख के अंत में दी गई है। उसमें युद्धसमाप्ति बाद पाण्डवों द्वारा नदीतट पर अशौच-पालन का पूरा एक मास बराबर दिखाया है। उस समय को केवल बारा दिन गिनने का कोई कारण नहीं। जो वैसा गिनते हैं वे कहते हैं कि अशौचपालन के प्रथम अठारह दिन तो युद्धकाल के अठारह दिनों में ही गिने जावें; क्योंकि लड़ाई के प्रथम दिन से ही योद्धा मरते थे। किन्तु प्रथम बात तो यह कि, महाकवि ने अशौचपालन का पूरा मास स्पष्टतया युद्धसमाप्ति पश्चात् की गई सामुदायिक दाह क्रिया के बाद ही बताया है; और फिर अब तो यहाँ सिद्ध किये अनुसार युद्धकाल के कुल दिन अठारह नहीं पैतीस हैं।

इसी प्रकार पांडवों का हस्तिनापुर प्रवेश, वहाँ युधिष्ठिर को राज्याभिषेक, और फिर शरशय्या पर पडे महात्मा भीष्म का अभूतपूर्व धर्मोपदेश आदि बादकी घटनाओं की भी क्रमवार तिथियाँ उपलब्ध हो जाती हैं। वह उपदेश कुल पाँच दिन चला। उसकी विशिष्ट तिथियाँ भी निश्चित हो रही हैं। बल्कि प्रत्येक तिथि को उपदेश कहाँ तक हुवा यह बताना भी संभव है। युद्ध समाप्ति के तुरन्त बाद पांडव हस्तिनापुर चले गये, या युद्ध समाप्ति और भीष्मनिधन के दरम्यान युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर में पचास रात्रियाँ बिताईं, या उपदेश समाप्ति और भीष्मनिधन के बीच उसने हस्तिनापुर में पाँच या पचास (या कुछ) दिन बिताये, आदि सब धारणायें[३४] भ्रामक हैं। इन धारणाओं के लिये प्रायः महाभारत की निम्न पंक्तियों का आधार लिया जाता है।

उषित्वा शर्वरीः श्रीमान् पंचाशन्नगरोत्तमे।
समयं कौरवाग्र्यस्य सस्मार पुरुषर्षभ ॥ (अनुशासन पर्व १६७/५)

किन्तु इस श्लोक में एक विलक्षण शाब्दिक कूट होकर उसका वास्तविक आशय भिन्न है। यह कूट भी अब हल हो गया है।

महाभारत युद्ध कालगणना के इन चमत्कारिक रहस्यों के कुछ प्रमाण इस लेख में बताये हैं। इस शोध का पूरा विवेचन ग्रंथरूप से तैयार है; उचित व्यवस्था होते ही वह प्रकाशित किया जायेगा। इस दरम्यान आशा है कि जितना विवेचन यहाँ किया जा सका वह भी महाभारत के अभ्यासकों में विश्वास निर्माण करने के लिये पर्याप्त होगा कि महाभारत काव्य के गूढ प्रतीत होनेवाले कालगणनात्मक कूट (या 'काल–कूट' कहिये!) अब पूर्णतया हल होने के मार्गपर हैं।

३४. देखिये, भांडारकर संस्था का 'अनुशासन पर्व' (पूर्वोल्लेखित), पृष्ठ ११२१; श्री. गोखले का (पूर्वोल्लेखित) लेख; तथा पंडित गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी एवं श्री. चिं. वि. वैद्य का ऊपर उद्धृत विवेचन।

तिथि तालिका

कृष्ण पक्ष (जो अमावास्यान्त पद्धति से कार्तिक माह का, किन्तु पूर्णिमान्त पद्धति से मार्गशीर्ष का होगा)।

,, सप्तमी :— असफल शांतिवार्ता; श्रीकृष्ण द्वारा हस्तिनापुर में ही युद्धारंभार्थ सात दिन बाद आनेवाली अमावास्या घोषित; उसी दिन श्रीकृष्ण की तुरन्त उपप्लव्य को वापसी और पाण्डवों को वृत्तकथन। महाभारत में स्पष्ट कहे अनुसार चन्द्रमा पुष्य नक्षत्र में। बलराम तीर्थयात्रा प्रारंभ।

,, अष्टमी से त्रयोदशी:—महाकवि ने लिखे अनुसार यह कृष्ण पक्ष तेरह दिन का था; अर्थात् उसमें दो तिथिलोप थे। अतः एक लोप इसके पूर्वार्ध में तथा दूसरा यहाँ उत्तरार्ध में मानकर अष्टमी से त्रयोदशी तक कुल दिन पाँच होते हैं। अब चूँकि आगामी अमावास्या को चित्रा नक्षत्र था, इन पाच दिनों में एक नक्षत्र वृद्धि आवश्यक है। इस प्रकार यहाँ कुल नक्षत्र आश्लेषा, मघा, पूर्वा एवं उत्तरा ये चारही होकर, इनमें से एक की वृद्धि है। इन्हीं दिनों में दोनों सेना कुरुक्षेत्र पहुँची, शिबिरादि निर्माण किये गये तथा युद्ध के पूर्वाभ्यास हुए। (इसका भी विस्तृत ब्योरा अब उपलब्ध हो गया है)।

,, चतुर्दशी :—संजय की धृतराष्ट्र के युद्ध-वार्ताहर रूप में व्यास द्वारा नियुक्ति। चन्द्रमा हस्त नक्षत्र में।

,, अमावास्या :— लड़ाई का प्रथम दिन (गीता जयंती तिथि)। चन्द्रमा का चित्रा नक्षत्र। बलराम यात्रा का आठवा दिन।

शुक्ल पक्ष (मार्गशीर्ष मास)

,, प्रतिपदा :— अवकाश दिन।

,, द्वितीया :— लड़ाई का दूसरा दिन।

,, तृतीया :—अवकाश दिन।

,, चतुर्थी :—लड़ाई का तीसरा दिन।

,, पंचमी :—अवकाश दिन।

,, षष्ठी :—लड़ाई का चौथा दिन।

,, सप्तमी :- अवकाश दिन।

,, अष्टमी :—लड़ाई का पाँचवाँ दिन।

,, नवमी :—अवकाश दिन।

,, दशमी :—लड़ाई का छठा दिन।

,, एकादशी :— अवकाश दिन।

,, द्वादशी :—लड़ाई का सातवाँ दिन

,, त्रयोदशी :—अवकाश दिन।

,, चतुर्दशी :—लड़ाई का आठवाँ दिन।

,, पूर्णिमा :—अवकाश दिन। चन्द्रमा कृत्तिका नक्षत्र में। इस शुक्ल पक्ष में स्वाती और भरणी के बीच किसी एक नक्षत्र का लोप है। अन्यथा, पूर्णिमा को चन्द्रमा का नक्षत्र भरणी होगा, जो मार्गशीर्ष पूर्णिमा को प्रायः संभव नहीं। अधिक से अधिक चन्द्रमा उस दिन मृग से दो नक्षत्र पूर्व कृत्तिका में मानना उचित है। यह दो नक्षत्रों का अंतर पूर्व पक्ष के दो तिथि लोपों से संबंधित माना जा सकता है। फिर उधर पौष शुक्ल पंचमी को श्रवण नक्षत्र निश्चित होने से इस पूर्णिमा का नक्षत्र कृत्तिका से और आगे भी नहीं जा सकता। स्वाती और भरणी के बीच इस प्रकार लुप्त नक्षत्र नक्की कौनसा था यह तो उन दिनों का पूरा पंचांग तैयार करने पर ही कहा जा सकेगा, जिसके लिये अब पर्याप्त आधार उपलब्ध हो रहे हैं।

कृष्ण पक्ष (जो अमावास्यान्त पद्धति से मार्गशीर्ष का, किन्तु पूर्णिमान्त पद्धति से पौष का होगा।)

,, प्रतिपदा :—लड़ाई का नववाँ दिन।

,, द्वितीया :—अवकाश दिन।

,, तृतीया :—लड़ाई का दसवाँ दिन। भीष्मपतन; उनकी शरशय्यापर प्रथम रात्रि। इस तिथि का महाभारत में एक सूचक संकेत है। इस रोज प्रातःकाल सूर्योदय के बाद भी आकाश में चन्द्रबिंब 'अवाक्शिराः' अर्थात् शिर नीचे किया हुवा दिख रहा था (भीष्मपर्व ११२/१२)! कृष्ण तृतीया को यह दृश्य पश्चिम आकाश में बराबर देखा जा सकता है। यह तिथि शुक्ल नवमी नहीं हो सकती (जैसा कि अमावस्या से युद्धारंभ लेकर लगातार प्रतिदिन लड़ाई की कल्पना करनेवाले मानते हैं)।

,, चतुर्थी :—अवकाश दिन। संजय का प्रथम युद्धवृत्तांत (गीता संवाद प्रकटन सह)। द्रोण को सेनापति-अभिषेक।

,, पंचमी :—लड़ाई का ग्यारहवाँ दिन।

,, षष्ठी :—अवकाश दिन।

,, सप्तमी :—लड़ाई का बारहवाँ दिन।

,, नवमी :—अवकाश दिन। इस पक्ष में एक तिथिलोप है; जिससे अमावास्या को चंद्रमा अनुराधा नक्षत्र में आकर अन्य ग्रहों की स्थिति ठीक बैठती है। इस तिथिक्षय की पूर्ति आगे पौष शुक्ल पक्ष में होती है।

,, दशमी :—लड़ाई का तेरहवाँ दिन। अभिमन्यु वध। इस तिथि का भी एक मार्मिक संकेत है। बादमें अभिमन्यु का शोक करती हुई विधवा उत्तरा कहती है, " एतावानिह संवासो विहितस्ते मया सह। षण्मासान् सप्तमे मासि त्वं वीर निधनं गतः " (स्त्रीपर्व, २०/२८)। अर्थात् उत्तरा-अभिमन्यु का सहवास छः माह रहकर सातवे मास में वह मरा। अतः अज्ञातवास समाप्ति पश्चात् उनका विवाह हुवा वहाँ से अभिमन्यु की मृत्यु तक छः माह पूर्ण होना चाहिये। अब इस संशोधन के पूर्वार्ध में अभिमन्यु विवाह का जो समय सिद्ध हो रहा है, वहाँ से इस कृष्ण दशमी तक बराबर छः माह पूर्ण हो जाते हैं।

,, एकादशी :—अवकाश दिन।

,, द्वादशी :—लड़ाई का चौदहवाँ दिन। जयद्रथ वध। उत्तररात्रि में चन्द्रोदय (अवकाश दिन का अभाव)।

,, त्रयोदशी :––लड़ाई का पन्द्रहवाँ दिन। द्रोणवध।

,, चतुर्दशी :––अवकाश दिन। कर्ण को सेनापति–अभिषेक।

,, अमावास्या :—लड़ाई का सोलहवाँ दिन।

पौष शुक्र प्रतिपदा :––अवकाश दिन।

,, द्वितीया :—लड़ाई का सत्रहवाँ दिन। कर्णवध। इस रोज सूर्यास्त बाद श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा युधिष्ठिर मृत कर्ण को प्रत्यक्ष देखने हेतु फिर रणभूमि पर गये। उस समय उन्होंने 'दीपों के प्रकाश में' वह शव देखा (कर्णपर्व ९६/३८)। अर्थात् अत्यंत क्षीण चन्द्रप्रकाश था, जो शुक्र द्वितीया का समर्थन करता है।

,, तृतीया :—अवकाश दिन। शल्य को सेनापति–अभिषेक। बलराम की तीर्थयात्रा का चालीसवाँ दिन।

,, चतुर्थी :––लड़ाई का साडेसत्रहवाँ दिन। मध्यान्ह में शल्यवध। दिन के उत्तरार्ध में लड़ाई बंद। दुर्योधन का सरोवर प्रवेश। बलराम तीर्थयात्रा का इकतालीसवाँ दिन।

,, पंचमी:––लड़ाई का अठारहवाँ दिन। इस रोज आधा दिन भीम-दुर्योधन गदायुद्ध। बलराम यात्रा की बराबर बयालीसवे दिन समाप्ति। (कृत्तिका से) लगातार गिनने से इस दिन चन्द्रमा श्रवण में। मध्यरात्रि में अश्वत्थामा द्वारा निद्रिस्त पाण्डव पक्ष की भीषण कत्तल। दुर्योधन मृत्यु। भीष्म शरशय्या की सत्रहवी रात्रि।

,, पंचमी (द्वितीय) :—सामुदायिक दाहक्रिया। इस पक्ष में कहीं तो भी एक तिथिवृद्धि है; अन्यथा पूर्णिमा को मृग नक्षत्र मानना पडेगा, जो पौष पूर्णिमा को प्रायः संभव नहीं। तिथि वृद्धि से आर्द्रा आवेगी। इस वृद्धि से पूर्व कृष्ण पक्ष के तिथि क्षय की पूर्ति होकर शरशय्या की अट्ठावन रात्रि बराबर पूर्ण होती है।

पौष शुक्र षष्ठी से माघ शुक्र पंचमी :— (तीस दिन का पूरा एक माह) पाण्डवों द्वारा अशौच पालन। भीष्म की शरशय्या पर उन्नीस से अडतालिस रात्रियाँ।

माघ शुक्र षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी :—पाण्डवों का हस्तिनापुर प्रवेश। युधिष्ठिर को राज्याभिषेक। भीष्म की शरशय्या पर ४९ से ५२ रात्रियाँ।

माघ शुक्र दशमी :– युधिष्ठिर तथा श्रीकृष्ण की भीष्म से धर्मोपदेशार्थ विनंती। उपदेश आगले रोज से प्रारंभ करने का भीष्म का आश्वासन। भीष्म से भेंट कर पाण्डव कुरुक्षेत्र से सूर्यास्त पर हस्तिनापुर वापिस जा रहे थे, तब सामने पूर्व क्षितिज पर चन्द्रोदय हो रहा था (शांति पर्व, ५२/३३)। यह शुक्र दशमी की तिथि के अनुरूप ही है।[३५] भीष्म की शरशय्यापर ५३ वी रात्रि।

माघ शुक्र एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा :— भीष्म का महान धर्मोपदेश। उनकी शरशय्या पर ५४ से ५८ रात्रि। ५८ वी रात्रि के समाप्ति समय माघ पूर्णिमा को उषःकाल में महात्मा भीष्म का प्राणोत्क्रमण।

---

३५. अब पाठकों को विश्वास होगा कि महाकवि ने नक्षत्र एवं ग्रह विषयक दिये सूक्ष्म उल्लेख पूर्णतया सुसंगत, योजना बद्ध एवं अर्थपूर्ण हैं।

समारोप

इस प्रकार महाभारत में सूचित युद्धकाल के (गुप्त) अवकाश दिवस, उनमें भी (एक) अभाव, लड़ाई के अंतिम रोज का (दो दिनो में) विभाजन, कुल मिलाकर युद्धकाल के (पैंतीस) दिन, युद्धारंभ का (चित्रा) नक्षत्र, भीष्मनिधन की अत्यंत गूढ (पूर्णिमा) तिथि तथा (प्रातःकाल की) वेला आदि सब रहस्य ध्यान में लेने बाद ही महाभारत काव्य की युद्धसंबंधी पूरी कालगणना सुसंगत उपलब्ध होती है। इसी प्रकार वनवास प्रारंभ, अज्ञातवास समाप्ति आदि युद्धपूर्व घटनाओं की भी सूक्ष्म कालगणना अब हस्तगत हो गई है। यह सब सामने रखने से जो एक भव्य चित्र तैयार होता है, उससे महाभारतकार एवं महाभारत काल पर भी अधिक प्रकाश पडेगा ऐसा विश्वास है। इसके अलावा एक और भी महत्त्व का परिणाम यह निकलेगा कि उपलब्ध विभिन्न पाठों में मूल महाभारत का पाठ निश्चित करने में इन कालगणनात्मक रहस्यों का भी अवश्य विचार करना पडेगा। जो पाठ इन मूलभूत रहस्यों से विसंगत होंगे उनको अनधिकृत मानना पडेगा; तथा जो सुसंगत होंगे उनपर विशेष ध्यान देना होगा।

अन्त में मैं एक स्पष्टीकरण करना चाहूँगा। इस प्रतिपादन में महाभारत के कई कालगणनात्मक कूटों का हल अब प्राप्त हो रहा है ऐसा मैंने ऊपर कहा है। किन्तु महाभारत का अध्ययन सदियों से, और एक दो नहीं अपितु कई भाषाओं में, अखिल भारतवर्ष में तथा विदेशों में भी बडी आस्था से होते आ रहा है। उस सबका अवलोकन किसी एक व्यक्ति के लिये प्रायः असंभव है। अतः यद्यपि मुझे ज्ञात कई पूर्वाध्ययनों के उल्लेख मैंने ऊपर किये है, फिर भी (मेरी भाषाविषयक तथा अन्य भी मर्यादा देखते हुए) उनके अलावा भी अब तक दुर्लक्षित कही गई कुछ बातों का स्पष्ट या अस्पष्ट विवेचन इसके पूर्व किसी के द्वारा किया होना पूर्ण असंभव नहीं कहा जा सकता। और ऐसी कोई स्थिति निदर्शन में आनेपर इस संबंध में उसका भी विचार उचित ही होगा। इसलिये यहाँ प्रतिपादित तिथिगणना से महाभारत के प्राचीन कालगणनात्मक कूट सुसंगत तरीके से हल होते हैं या नहीं इसीपर विद्वानों ने फिलहाल मुख्यतः लक्ष केन्द्रित किया तो भी मैं अनुगृहीत होऊँगा। ऐसे देशदेशांतरव्यापी तथा दीर्घकालीन अध्ययन के विषय में अंतिम मौलिकता का आखिरी निर्णय तो काल का प्रवाह स्वयं ही देगा। और मैं यह भी भली भाँति जानता हूँ कि, जब कभी भी वह दिया जावेगा, उसके बाद आनेवाले कालप्रवाह में उसका भी महत्त्व नष्ट होकर, केवल महाभारतकार विभूति की प्रासादिक वाणी तथा उसकी वास्तविक आशय ही साधारणतः जनता के मानस में रहेगा और रहना पर्याप्त होगा। इस बीच महाभारत की यह रहस्यमय कालगणना सर्वमान्य होते ही इस प्रकार का यह प्रचंड अद्भुत महाकाव्य निर्माण करते हुए भी स्वयं का नाम तथा स्थलकाल ही गूढ रखनेवाला उसका वास्तविक रचयिता, उसके द्वारा संकल्पित महाभारत युद्ध का विशिष्ट वर्ष, महाभारत का रचनाकाल आदि अन्य समस्याओं की ओर तुरन्त ध्यान देना इष्ट होगा।

इस संशोधन पर कुछ सम्मतियाँ

प्रकांड पंडित डॉ. संपूर्णानंद (भूतपूर्व मुख्य मत्री उत्तर प्रदेश, तथा राज्यपाल, राजस्थान) :–".. आप कर रहें महान कार्य...क्या आपके शोध का प्रतिपादन करने हेतु आप वाराणसी आ सकेंगे ? हम सब उपलब्ध विद्वानों को आमंत्रित करेंगे।...आपका प्रत्येक पत्र मेरी तृष्णा तीव्र करता हुआ मेरी जिज्ञासा बढ़ाता है...आपने इस विषय पर जो नया प्रकाश डाला है वह सर्वथा उपादेय है।"

महामहोपाध्याय पं. परमेश्वरानंद शास्त्री, विद्याभास्कर, (भारत सरकार द्वारा सम्मानपत्र से विभूषित, भूतपूर्व सदस्य केन्द्रीय संस्कृत बोर्ड) दिल्ली :—" आपके वैदुष्यपूर्ण व्याख्यानों से दिल्ली का 'श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ' गौरवान्वित हुआ है। आपके व्याख्यानों ने महाभारत युद्धसंबंधी कई प्रचलित मान्यताओं के संबंध में गवेषणानिरत विद्वानों को पुनः विचार करने की प्रेरणा दी है।...इससे कई असमाहित प्रश्न भी समाहित हो सकेंगे। अब तक की उलझी हुई गुत्थियाँ भी सुलझ जायेंगी। पाश्चात्य विद्वानों की भी आँखें खुलेंगी। महाभा त के असंलग्न श्लोकों का तात्पर्य भी स्पष्ट होगा।"

अग्रगण्य इतिहास संशोधक महामहोपाध्याय डॉ. वा. वि. मिराशी, डी. लिट्, नागपूर :–" महाभारत युद्ध कौनसी तिथि पर प्रारंभ हुआ और कितने दिन चला ये प्रश्न अति प्राचीन काल से अत्यंत वादग्रस्त बने हैं। 'महाभारत' में उस विषय में कई उल्लेख हैं; किन्तु किसी को भी उन सब उल्लेखों की तो क्या अपितु बहुतांश उल्लेखों की भी सुसंगति बताते नहीं आई थी......प्राचार्य ग. वा. कवीश्वर ने महाभारत ग्रंथ के युद्धविषयक वचनों का सूक्ष्म अध्ययन कर वे सब सुसंगत हैं; युद्ध की सब तिथियाँ, बलराम तीर्थयात्रा के दिन, भीष्मनिधन आदि के महाभारत में उल्लेख कैसे बराबर हैं यह सविस्तर बताया है......यह प्रथम विस्तारपूर्वक प्रतिपादन करने का श्रेय पूर्णतया प्रा. कवीश्वर को है......यदि यह विवेचन मान्य होता है, और वह सर्वमान्य होना चाहिए इतने प्रमाणों से साधार प्रतिपादन किया गया है, वर्तमान में प्रचलित कुछ महत्त्वपूर्ण तिथियाँ (जैसे गीताजयंती तिथि, भीष्मनिधन तिथि) बदलनी पडेगी......"

श्री. का. ल. जोशी, कुलपति, इन्दौर, विश्वविद्यालय :—" आचार्य कवीश्वर ने महाभारत कालगणना के क्षेत्र में एक नयी दृष्टि प्रस्तुत कर, कौरव–पांडव युद्ध के काल का मौलिक तथा तर्कसंगत स्पष्टीकरण दिया है। महाभारत के अभ्यासकों द्वारा आचार्य कवीश्वर के सिद्धान्तों का गंभीर विचार होना चाहिये।"

डॉ. शं. गो. वाळिंबे, अध्यक्ष मराठी विभाग, इन्दौर विश्वविद्यालय :—
" महाभारत पर प्राचार्य कवीश्वर का क्रांतिकारी शोध "

बंबई के प्रसिद्ध दैनिक 'मराठा' में प्रकाशित वृत्त :—" प्रा. कवीश्वर के इस अत्यंत मूलगामी शोध से महाभारत अध्ययन के क्षेत्र में एक नये युग का प्रारंभ हुआ है।"

गोवा के प्रमुख दैनिक 'गोमंतक' में संपादकीय लेख :—" इस नये अनुसंधान के फलस्वरूप अब गीताजयंती की तिथि बदलने का समय आ गया है।"

नागपूर टाइम्स्, नागपूर :—" अकेले एक व्यक्ति की यह खोज......शोध जो स्वयं उन्हींका है......(महाभारत की) यह तथा अन्य भी कई घटनाएँ, जिनकी सुसंगति लगाने के अभी तक के सब प्रयास विफल हुए थे, आपने सुस्पष्ट कर एक सूत्रबद्ध विवेचन में प्रस्तुत किये है।"